प्रातः स्मरणीय पञ्च कन्याएं
एक संक्षिप्त परिचय

पञ्च कन्याएं

कथाकार
डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रातः स्मरणीय पञ्च कन्याएं
एक संक्षिप्त परिचय

कथाकार

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
ऑस्ट्रेलिआ – ६०२५

समर्पण

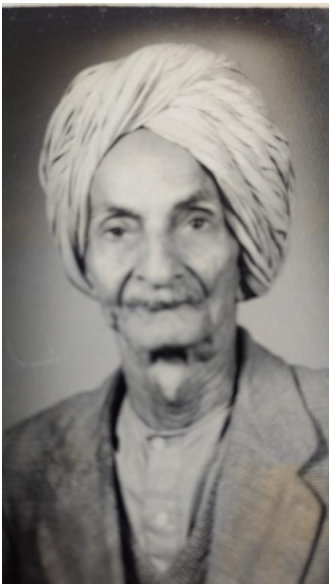

आदरणीय पितामह स्वर्गीय श्री भगवान दास शर्मा जी को समर्पित

क्रमावली

Contents

क्रमावली..... 4

प्रस्तावना..... 5

अध्याय १ - प्रथम पंचकन्या अहिल्या..... 6

अध्याय २ - द्वितीय पंचकन्या तारा 21

अध्याय ३ - तृतीय पंचकन्या मंदोदरी 45

अध्याय ४ - चतुर्थ पंचकन्या कुंती – 73

अध्याय ५ - पंचम पंचकन्या द्रोपदी – 87

प्रस्तावना

प्रातः स्मरणीय पञ्च कन्याएं

महाऋषी वेद व्यास जी ने कहा है :

अहिल्या द्रोपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा ।
पंचकन्या स्वरानित्यम महापातका नाशका ॥

"पांच अक्षतकुमारियों - अहिल्या, तारा, मन्दोदरी, कुन्ती और द्रोपदी प्रातः स्मरणीय हैं। इनके स्मरण मात्र से महापापों का भी नाश हो जाता है।"

पंचकन्याओं के इस समूह में तीन - अहिल्या, तारा, मन्दोदरी का वाल्मिकी रामायण से सम्बन्ध है, तथा द्रौपदी और कुन्ती महाभारत में वर्णित प्रमुख पात्र हैं।

महाऋषी वाल्मिकी और महाऋषी व्यास दोनों ही अपने युग के महान ऋषी, भगवद्भक्त एवं दिव्यदृष्टि धारक थे। उन्होंने सत्य को दिव्यदृष्टि से जान यह महाकाव्य रचे थे। इन महाऋषियों ने इन पञ्चकन्यायों को प्रातः स्मरणीय एवं महा पाप नाशक क्यों कहा, इस तथ्य का मूल्यांकन करने के लिये यह अति आवश्यक है कि इनके चरित्र की पवित्र भावनाओं तक पहुंचा जा सके।

अध्याय १ - प्रथम पंचकन्या अहिल्या

पौराणिक कथाओं में अहिल्या जन्म एवं उनके विवाह की कथा कुछ इस प्रकार है।

एक बार इंद्रदेव किसी कारणवस उर्वशी अप्सरा से कुपित हो गए। उन्हें लगा कि उर्वशी को अपनी सुंदरता पर इतना अभिमान हो गया है कि उन्हें किसी का भी मान नहीं रहा, यहां तक कि स्वयं इंद्रदेव का। कुपित इंद्रदेव ब्रह्मदेव के आवास ब्रह्मलोक में गए। उस समय ब्रह्मदेव सप्तऋषियों के साथ यज्ञ करने की तैयारी में थे और यज्ञ कुंड निर्मित किया जा रहा था। इंद्रदेव ने अपनी व्यथा ब्रह्मदेव को सुनाई तथा विनती की कि उर्वशी का अभिमान तोड़ना अत्यंत आवश्यक है। उनकी प्रार्थना पर, ब्रह्मदेव ने यग्न कुंड की मिट्टी से ही एक अत्यंत रूपवती बालिका की मूर्ती निर्मित की, और उसमें प्राण डाल दिए। अपनी इस स्वयं की कृति में ब्रह्म देव को पूर्णता नज़र आई। इतनी सुन्दर बालिका, कोई दोष नहीं। संसार में उर्वशी क्या, कोई भी

अप्सरा, कोई भी नारी, ना इतनी रूपवान है और संभवतः ना कभी होगी। ब्रह्मदेव ने इस कन्या का नाम अहिल्या रखा। अहिल्या का अर्थ है जिसमें कोई दोष न हो।

अब सबसे बड़ा प्रश्न ब्रह्मदेव के मष्तिष्क में यह आया कि इतनी अपूर्व सुंदरी कन्या का लालन पालन बिना उसकी सुंदरता से प्रभावित होकर कौन कर सकता है? पूरी अपनी सृष्टि में उन्होने दृष्टी डाली। केवल और केवल गौतम महिषी ही उन्हें ऐसे दृष्टिगोचर हुए जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले रक्खा था, तथा ब्रह्मदेव की कोई उत्पत्ति उन्हें प्रभावित नहीं कर सकती। ब्रह्मदेव महाऋषी गौतम जी के पास उनके आश्रम में गए तथा उनसे प्रार्थना की कि इस कन्या का वह लालन पालन करें, तथा जब वह वयस्क हो जाए तो उसे ब्रह्मदेव को लौटा दें। ब्रह्मदेव पिता का कर्तव्य करते हुए तब उसके लिए उचित वर ढूंढेंगे और उसका विवाह कर देंगे। महाऋषी ने ब्रह्मदेव के निर्देश को स्वीकार किया और अहिल्या का लालन पालन उनके आश्रम में उनके शिष्यों की पत्नियां (ऋषी-पत्नियां) एवं पुत्रियों (ऋषी-पुत्रियां) के साथ होने लगा।

इसी तरह समय बीतता गया और देखते देखते ही अहिल्या वयस्कता को प्राप्त हुई। अपने वचनानुसार महिषी गौतम जी अहिल्या को वयस्कता प्राप्त होने के पश्चात ब्रह्मलोक ले गए ताकि अब ब्रह्मदेव उनके लिए उचित वर ढूंढ सकें। यहां यह व्यक्तत्व सन्दर्भमय होगा कि अहिल्या ने अपने महर्षि गौतम जी के आश्रम में पूर्ण तन्मयता से उनकी सेवा की। अहिल्या की सेवा भावना से प्रभावित हो महाऋषी गौतम जी ने उन्हें चिर-यौवन का वरदान भी दिया, अर्थात वो हमेशा १६ साल की ही रहेंगी, ऐसा वरदान दिया।

जिस समय महाऋषी गौतम जी ब्रह्मलोक अहिल्या को लेकर ब्रह्मलोक पहुंचे, उस समय इन्द्रदेव भी किसी कार्यवश वहां ब्रह्मदेव के पास आये हुए थे। अहिल्या की सुंदरता देखते ही रह गए। जब महिषी गौतम जी वापस अपने आश्रम में चले गए तो इंद्रदेव ब्रह्मदेव से मिले और अहिल्या का विवाह

उनके साथ करने का प्रस्ताव रक्खा। ब्रह्मदेव ने उनसे इस पर विचार करने का आश्वासन इंद्र देव को दिया।

इसी समय महाराज जनक जी के राजपुरोहित महाऋषी याज्ञवल्कय जी ने राजपुरोहिती से अवकास प्राप्त कर संन्यास स्वीकार करने का निश्चय लिया। अपना निश्चय उन्होंने महाराज विदेह जनक को सुनाया। विदेह यह सुनकर अत्यंत चिंता में पड़ गए। उस समय दो ही तो महाज्ञानी महाऋषी थे जो राजपुरोहिती का पद स्वीकार किये हुए थे। एक तो महाऋषी वशिष्ठ जी और दुसरे महाऋषी याज्ञवल्कय जी। अन्य महाज्ञानी महाऋषी तो इस सांसारिकता में पड़ना ही नहीं चाहते थे। अब महाऋषी वशिष्ठ जी तो महाराज दशरथ के राजपुरोहित हैं। वह तो महाराज जनक की राजपुरोहिती स्वीकार करेंगे नहीं। फिर किन महाज्ञानी महाऋषी को यह पद दिया जाय? और फिर राजपुरोहित का पद तो किसी महाज्ञानी को ही दिया जा सकता है जो महाराज जनक के साथ साथ पूरे जनक साम्राज्य का मार्ग दर्शन कर सके। इसी दुविधा में जब वह अपने दरबार में विचारलीन थे तो संयोग कहिये या भगवान् की लीला, ब्रह्मऋषि नारद जी का महाराज जनक जी के दरबार में आगमन हुआ।

ब्रह्मऋषि नारद जी ने उनसे चिंता का कारण पूछा जो महाराज विदेह जी ने विस्तार से ब्रह्मऋषि को बताया। ब्रह्मऋषि नारद जी विदेह जी को सांत्वना देकर बोले, "महाराज यह कार्य आप मुझ पर छोड़ दीजिये। मैं आपके लिए एक महाज्ञानी महाऋषी अवश्य ही ढूंढ कर आपकी सेवा में उपस्थित करूंगा जो आपके राजपुरोहिती के लिए उचित होंगे।" यह कहकर ब्रह्मऋषि अपने भाई महाऋषी याज्ञवल्कय जी के आश्रम में आये। इस विषय एवं अन्य आध्यात्मिक विषयों पर चर्चाएं कीं और कुछ समय वहां रहे। फिर अपना 'नारायण नारायण' का जाप करते हुए घूमते हुए अपने पितृगृह ब्रह्मलोक को चले। रास्ते में सोचते जाते थे कि मैंने इतना बड़ा वचन महाराज जनक को दे तो दिया, लेकिन स्वयं ब्रह्मा के अंश मेरे सहोदर भाई महाऋषी याज्ञवल्कय जी के समान तो छोड़िये, उनके पासंग के बराबर भी ज्ञानी

पुरुष मैं कहाँ से ढूंढ कर लाऊंगा जो महाराज जनक की राजपुरोहिती स्वीकार करे? मेरे पिता ब्रह्मदेव इस में मेरी सहायता अवश्य करेंगे। बस यही सोचते सोचते वह ब्रह्मलोक में पहुँच गए।

वहां अपनी बहन अहिल्या को देखा और पिता से मिलन किया। ब्रह्मदेव ने अहिल्या के जन्म, उसका महाऋषि गौतम जी के द्वारा लालन पालन एवं वयस्कता प्राप्त करने पर वापस ब्रह्मलोक में छोड़ने का समस्त विवरण विस्तार पूर्वक कहा। यह भी कहा कि इंद्रदेव ने अहिल्या को विवाह में माँगा है। महाऋषी गौतम जी की प्रशंसा की। इस अपूर्व सुंदरी का लालन पालन करने में एक बार भी उनका मन इसकी सुंदरता के बारे में चिंतन करने पर नहीं डोला। कितने संयमी और ब्रह्मचर्य व्रत पालनहार है महाऋषी गौतम जी। ऐसा चरित्रवान महाऋषी मेरी पूर्ण सृष्टी में कहीं नहीं है।

ब्रह्मऋषि नारद जी विचार में डूब गए। अगर यह संभव हो सके कि मैं अहिल्या का विवाह महाऋषी गौतम जी से करवा दूँ तो इनसे प्राप्त पुत्र अत्यंत महाज्ञानी होगा। अहिल्या स्वयं ब्रह्मा की पुत्री, मेरी और महाऋषी याज्ञवल्कय जी की बहन हैं। उनकी सुंदरता और ज्ञान, महाऋषी गौतम जी का चरित्र और आध्यात्मिक ज्ञान, इसका कोई विकल्प नहीं। इन दोनों से प्राप्त पुत्र में इन दोनों के ही गुण होंगे। तुरंत अपना विचार पिता ब्रह्मदेव को कहा। कहा – "मेरी बहन का विवाह आप कामी, बहुविवाह वाले एवं अप्सराओं में लिप्त इंद्र से करेंगे, यह उचित नहीं। मेरी बहन का विवाह तो अत्यंत संयमी एवं महाज्ञानी ऋषी से ही होना चाहिए और मेरी समझ में इस सृष्टी में महाऋषी गौतम से उपयुक्त अहिल्या के लिए कोई वर नहीं है।"

ब्रह्मदेव चिंता में पड़ गए। मैंने तो इंद्र देव को वचन दिया है कि मैं उनके प्रस्ताव पर विचार करूंगा। क्या कहकर अब उनसे मना किया जाएगा? ब्रह्मदेव और ब्रह्मऋषि नारद जी में मंत्रणा होने लगी। ऐसा निश्चय हुआ कि ब्रह्मदेव यह घोषणा करें कि अहिल्या के विवाह के लिए एक प्रतियोगिता आयोजित की है। जो भी प्रतियोगिता प्रारम्भ होने पर, सब से पहले तीनों

लोकों की परिक्रमा कर के सबसे पहले वापस आएगा उसी से अहिल्या का विवाह होगा। प्रतियोगिता की दिनांक निर्धारित कर दी गयी।

अब ब्रह्मऋषि नारद जी अपने भ्राता याज्ञवल्कय जी के आश्रम मिथलापुरी पहुंचे और अपनी योजना से अवगत कराया। याज्ञवल्कय जी की सहमती प्राप्त कर दोनों ने मिलकर योजना बनाई। सर्व प्रथम महाऋषी गौतम जी को विवाह के लिए मनाना था। यहाँ ब्रह्मऋषि नारद जी ने महाऋषी याज्ञवल्कय जी की अनुमति से यह विवाह का विचार महाऋषी गौतम जी के समक्ष रखने की योजना बनाई, इस सहमति के साथ कि यह प्रस्ताव ब्रह्मपुत्र महाऋषी याज्ञवल्कय जी का है। ब्रह्मऋषि नारद जी जानते थे कि महाऋषी याज्ञवल्कय के प्रस्ताव को महाऋषी गौतम जी कभी नहीं ठुकरायेंगे। पहली अड़चन तो संभवतः हट जाएगी यानी ब्रह्मऋषि जी को पूर्ण विश्वास हुआ कि महाऋषी गौतम जी विवाह को तो तैयार हो जांयेंगे, परन्तु दूसरी अड़चन कि वह प्रतियोगिता में भाग लें और प्रथम भी आये, यह कैसे हो? इसका समाधान महाऋषी याज्ञवल्कय जी ने तुरंत दे दिया।

महाऋषी याज्ञवल्कय जी ने सुझाव दिया कि महाऋषी गौतम के पास एक सुरभी नामक गौ माता हैं, जो कामधेनु माँ की बहन हैं। गौ माँ सुरभी की परिक्रमा तीनों लोकों की परिक्रमा के बराबर है। गौ माँ में तीनो लोकों का वास है। बस महाऋषी गौतम जी को प्रतियोगिता प्रारम्भ होने के तुरंत पश्चात माँ सुरभी की परिक्रमा करके शीघ्र ब्रह्मलोक पहुंचना है। बाकी जब शास्त्रार्थ होगा तो स्वयं महाऋषी याज्ञवल्कय जी यह सिद्ध कर देंगे कि गौ माँ सुरभी की परिक्रमा तीनों लोकों की परिक्रमा के बराबर है, और महाऋषी गौतम को विजयी घोषित कर देंगे।

इसी योजना के अनुसार कार्य हुआ। ब्रह्मऋषि नारद जी महाऋषी गौतम जी के पास पहुंचे। महाऋषी याज्ञवल्कय जी का अहिल्या के साथ विवाह प्रस्ताव सुनाया। बड़े अनमने मन से, परन्तु महाऋषी याज्ञवल्कय जी के प्रस्ताव को उनका आदेश मानकर विवाह के लिये तैयार हो गए।

प्रतियोगिता का दिन आया। योजना के अनुसार महाऋषी याज्ञवल्कय जी को ब्रह्मदेव ने न्यायाधीश के पद पर बिठा दिया। महाऋषी गौतम जी तुरंत प्रतियोगिता प्रारम्भ के पश्चात गौ माँ सुरभी की परिक्रमा कर ब्रह्मलोक पहुंचे। बाद में इंद्र देव भी तीन लोकों की परिक्रमा करके पहुंचे। लेकिन महाऋषी याज्ञवल्कय जी ने महाऋषी गौतम जी को विजेता घोषित कर दिया। इंद्र ने यह निर्णय मानने से मना कर दिया। देवगुरु वृहस्पति इंद्र की ओर से शास्त्रार्थ करने को तैयार हुए। महाऋषी याज्ञवल्कय जी और देवगुरु वृहस्पति में शास्त्रार्थ हुआ। अंततः जीत महाऋषी याज्ञवल्कय जी की हुई, और इस तरह अहिल्या का विवाह महाऋषी गौतम जी से हो गया।

महाऋषी गौतम जी विवाह पश्चात अपनी धर्मपत्नी अहिल्या के साथ नासिक के पास आश्रम बनाकर अपने शिष्यों के साथ रहने लगे। एक बार इस भूतल पर बारह साल अनावृष्टि के कारण भयंकर अकाल पड़ा। परिणामस्वरूप असंख्य जीवधारियों के साथ औषधियों का भी विनाश होने लगा। इस संदर्भ में महर्षि गौतम ने जनकल्याण हेतु सत्र यज्ञ का संकल्प किया। यह यज्ञ धर्मपत्नी की पवित्रता, पतिव्रता और आत्मबलिदान से ही संपन्न हो सकता था। अहिल्या जी में यह सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने अपने पति का इस जन कल्याण यज्ञ में पूर्ण साथ दिया।

पितामह ब्रह्मा महाऋषी गौतम एवं अहिल्या के संकल्प पर हर्षित हुए। उन्होंने चिंतामणि सदृश धान के बीज महाऋषी गौतम को प्रदान किए। उन बीजों का माहात्म्य सुनिए । प्रथम पहर में वे बीज बो देते हैं तो दूसरे पहर में कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। मध्याह्न के समय आप धान से अन्न बनाकर भोजन कर सकते हैं।

ब्रह्मा से प्राप्त इस अपूर्व धान की बदौलत महर्षि गौतम एवं अहिल्या यज्ञ में सम्मिलित हुए सभी जनों को समय पर अन्नदान करते रहे। यह समाचार दावानल की भांति सर्वत्र फैल गया। फिर क्या था। क्षुधा पीड़ित मुनि और

वनवासी आश्रम में पहुंचने लगे। समस्त मुनि मंडल समय पर गौतम ऋषि के आश्रम में पहुंचे और सत्कार पाकर यज्ञ समाप्ती तक वहीं रहे।

इस बीच अनावृष्टि समाप्त हो गई। समस्त भूमंडल पर भारी वर्षा हुई। सारी धरती शस्य-श्यामला हो हरीतिमा से लहलहा उठी। अन्न का अकाल दूर हो गया। यज्ञ में आहूत ऋत्विज मुनि अब अपने-अपने आश्रमों को लौटने की तैयारी करने लगे। वनवासी अपने निवास को लौट गए। परंतु गौतम मुनि एवं अहिल्या ने तपस्वियों को थोड़े समय तक और रुक जाने की अभ्यर्थना की।

समस्त मुनिगण इस विनय पर महाऋषी गौतम के आश्रम में ही रह गए। जब गौतम महर्षि द्वारा आयोजित नववर्ष शतक्रतु समाप्त हो चुका, तब कुछ मुनियों ने अपने आश्रमों का संकल्प किया और महर्षि गौतम से अनुमति मांगी। परंतु महर्षि गौतम ने उनको अनुमति नहीं दी। इस पर वे सोचने लगे। हम लोग दुर्भिक्ष के समय महर्षि गौतम के आश्रम में रहे, यह उचित भी था। किंतु जब सारा देश सुभिक्षित है, तब वे जबर्दस्ती हम लोगों को रोक रहे हैं। यह अच्छा नहीं है। लगता है कि इनके भीतर अन्नदान करने का अहंकार हो गया है। हम लोग केवल इनके आश्रम में रहकर अपना पेट पाल रहे हैं। हमारा अस्तित्व कुछ है ही नहीं। यह ही क्या एक तपोबल रखते हैं और क्या अकेले ही वेद शास्त्रों के ज्ञाता हैं? इसलिए इनको किसी प्रकार से दोषी ठहराकर इनके अहंकार का दमन करके हमें यहां से निकलना चाहिए।

यों विचार करके द्वेषी मुनियों ने एक मायावी गाय की सृष्टि की और उसको गौतम महर्षि के खेत में छोड़ आए। गाय के गले में एक पगड़ी बंधी हुई थी। उसके साथ बछड़ा भी था। गाय धान और गेहूं की फसल चर रही थी। गौतम महर्षि प्रात:कालीन स्नान-संध्या आदि नित्य नैमित्तिक कृत्यों से निवृत्त होकर अपने आश्रम को लौट रहे थे। खेत में फसल चरती गाय को देख महर्षि ने हांक दिया, पर वह हिली-डुली नहीं। इस पर महर्षि गौतम ने अपने

कमंडल का जल हाथ में डालकर गाय पर छिड़क दिया। जल का स्पर्श लगते ही गाय ने खेत में ही अपने प्राण त्याग दिए। महर्षि गौतम गाय की मृत्यु पर चकित रह गए। अपने आश्रम को लौटकर ऋषि-मुनियों से प्रार्थना की। तपस्वियो बताइए, "मैंने खेत में चरती गाय पर जल छिड़क दिया। गाय मर गई। इस गोवध का प्रायश्चित क्या होगा?"

तपस्वियों ने कहा कि आपने इच्छापूर्वक गाय का वध कर डाला। इसके लिए प्रायश्चित का कोई विधान नहीं है। यदि आप गाय को जीवित देखना चाहते हैं तो एक ही उपाय है कि दिव्य जल से उसे अभिषिक्त करें। जब तक आप दिव्य जल से अभिषिक्त नहीं कर देते तब तक आप यज्ञादि संपन्न नहीं कर सकते। इस जघन्य पाप के भागी हुए आपके आश्रम में हम एक क्षण भी ठहर नहीं सकते। यह कहकर समस्त मुनी मंडल साधु पुरुष गौतम के आश्रम से चले गए।

इसके उपरांत गौतम महर्षि ने गंगाजल से गाय को पुनर्जीवित करने का निश्चय करके गंगाधर शिव जी के प्रति घोर तपस्या करने का संकल्प किया। अपनी तपस्विनी पतिव्रता पत्नी अहिल्या के साथ कैलाश शिखर पर पहुंचकर अनेक वर्षो तक महर्षि गौतम एवं अहिल्या ने तपस्या की। महर्षि गौतम एवं अहिल्या की तपस्या पर प्रमुदित होकर भक्तवत्सल शिव शंकर ने प्रत्यक्ष होकर पूछा, "महर्षि गौतम, मैं तुम्हारी तपस्या पर प्रसन्न हूं। मांगो, तुम कैसा वरदान चाहते हो?" इस पर महर्षि गौतम ने भक्तिपूर्वक महेश्वर को प्रणाम करके निवेदन किया, "भगवन, मुझे गंगा प्रदान कीजिए।"

तत्काल शिव जी ने अपने जटाजूट से एक जटा निकालकर महर्षि गौतम के हाथ में रख दी और कहा कि तपस्वी, "तुम जलसिक्त इस जटा को ले जाकर मृत गाय के स्थल पर रख दो। वहां पर एक नदी का उद्भव होगा। नदी जल के स्पर्श मात्र से गाय पुनर्जीवित होगी और तुम गोवध के पाप से मुक्त हो जाओगे। साथ ही इस घटना के षड्यंत्र का तुम्हें बोध होगा।"

महादेव के अदृश्य होते ही गौतम मुनि ने जटा को ले जाकर मृत गाय के स्थल पर रख दिया। उसी क्षण वहां पर तेज धार वाली गंगा प्रादुर्भूत हुई। गंगाजल के स्पर्श से गाय जीवित हो उठी। इसके बाद गंगा की वह धारा महर्षि गौतम के पीछे बह चली। गाय की रक्षा जिस धारा से हुई वह गोदावरी नाम से विख्यात हुई और चूँकि महर्षि गौतम इस धारा को लाए थे, इस कारण वह महानदी 'गौतमी' नाम से भी लोक प्रशस्त हुई।

महेश्वर की महिमा से महर्षि गौतम को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। मुनियों की प्रवंचना से परिचित हो महर्षि गौतम ने उन कृतघ्न तपस्वियों को शाप दिया, "तुम लोग अपने ज्ञान से वंचित होकर तपोविहीन बन जाओगे।"

इस श्राप को प्राप्त कर मुनियों के मन में घोर पश्चाताप हुया। महाऋषी गौतम जी के चरण पकड़ कर क्षमा माँगी तथा इस श्राप से मुक्ति का मार्ग सुझाने की प्रार्थना की। तब महाऋषी एवं अहिल्या ने दया कर उन्हें सत्कर्म फल प्राप्त करने के लिए सह्याद्रि में स्थित भैरव क्षेत्र में जाने का उपाय बताया। तब महर्षि गौतम एवं अहिल्या से विदा लेकर मुनीगण पुण्यप्रदायी भैरव क्षेत्र की ओर निकल पड़े।

ऋषि गौतम अपनी पत्नी अहिल्या के साथ सुख से अपने नासिक आश्रम में रहते थे। देवराज इंद्र ब्रह्मदेव को अहिल्या से अपने विवाह करने का प्रस्ताव और उसका ब्रह्मदेव द्वारा तिरष्कार को अभी भूले नहीं थे। अहिल्या की सुंदरता उनके मन मष्तिष्क में बुरी तरह छाई हुई थी। हर संभव मौका ढूंढते थे कि किस तरह अहिल्या से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किये जांय। आखिर एक रात्री को उन्हें मौका मिल ही गया।

इन्द्र को अहिल्या के रूप को पाने की एक युक्ति सूझी। उन्होंने एक सुबह गौतम ऋषि के वेश में आकर अहिल्या के साथ कामक्रीडा करने की योजना बनाई। सूर्य उदय होने से पूर्व ही गौतम ऋषि नदी में स्नान करने

एवं नित्य कर्म के लिए चले जाते थे और इसके बाद करीब २-३ घंटे बाद पूजा करने के बाद ही वापस अपनी कुटी में आते थे। इन्द्र आधी रात से ही कुटिया के बाहर छिपकर ऋषि के जाने की प्रतीक्षा करने लगे। इस दौरान इन्द्र की कामेच्छा उन पर इतनी हावी हो गई कि उन्हें एक और योजना सूझी। उन्होंने अपनी माया से ऐसा वातावरण बनाया जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि सुबह हो गई। इस माया को सत्य समझकर गौतम ऋषि कुटिया से बाहर चले गए। उनके स्नान, पूजा आदि के लिए जाने के कुछ समय बाद इन्द्र ने गौतम ऋषि का वेश बनाया और कुटिया में प्रवेश किया। उन्होंने आते ही अहिल्या से प्रणय निवेदन किया। अपने पति द्वारा इस तरह के विचित्र व्यवहार को देखकर देवी अहिल्या को शंका हुई। महा पतिव्रता अहिल्या ने इंद्र की विशेष सुगंधी से इन्हें पहचान लिया। इंद्र देव को समझाने का प्रयास किया कि वह विवाहिता नारी हैं तथा यह उनके सतीत्व का अपमान होगा। लेकिन इंद्र का मन-मष्तिष्क तो बुरी तरह से काम वासना से पीड़ित था। अहिल्या ने शांति पूर्व ढंग से विनय की कि इंद्रदेव वापस लौट जाएँ अन्यथा अपने सतीत्व के तेज से वह श्राप दे देंगी। अब इंद्र को होश आया और वह चुपचाप वहां से जाने लगे।

दूसरी तरफ नदी के पास जाने पर गौतम ऋषि ने आसपास का वातावरण देखा जिससे उन्हें अनुभव हुआ कि अभी भोर नहीं हुई है। वो किसी अनहोनी की कल्पना करके अपने आश्रम तुरंत लौटे। वहां जाकर उन्होंने देखा कि उनके वेश में कोई दूसरा पुरुष उनकी कुटिया से बाहर निकल रहा है।

ये देखते ही वह क्रोधित हो गए। इन्द्र भयभीत हो गए। क्रोध से भरकर गौतम ऋषि ने इन्द्र से कहा "मूर्ख, तूने मेरी पत्नी के स्त्रीत्व भंग का प्रयास किया है। उसकी योनि को पाने की इच्छा मात्र के लिए तूने इतना बड़ा अपराध करने का प्रयास किया। तुझे स्त्री योनि को पाने की इतनी ही लालसा है तो मैं तुझे श्राप देता हूं कि अभी इसी समय तेरे पूरे शरीर पर हजार योनियां उत्पन्न हो जाएगी।" कुछ ही पलों में श्राप का प्रभाव इन्द्र के शरीर

पर पड़ने लगा और उनके पूरे शरीर पर हजार स्त्री योनियां निकल आई। ये देखकर इन्द्र आत्मग्लानिता से भर उठे। उन्होंने हाथ जोड़कर गौतम ऋषि से श्राप मुक्ति की प्रार्थना की। ऋषि ने इन्द्र पर दया करते हुए हजार स्त्री योनियों को हजार आंखों में बदल दिया।

इधर अहिल्या यह दृश्य देखकर क्षुब्धित हो गयीं। उनके मस्तिष्क को इतना आघात लगा कि वह पत्थर जैसी हो गयीं।

तब सतानंद बालक ने अपने पिता की बहुत स्तुती की तथा माँ को इस क्षुब्धिता से बाहर निकालने की प्रार्थना की। महिषी गौतम जी बालक सतानंद की प्रार्थना से प्रसन्न होकर बोले कि भगवान् राम का जब इस आश्रम में मुनी विश्वामित्र के साथ आगमन होगा तब उनकी चरण रज पड़ने से तुम्हारी माँ की क्षुब्धिता समाप्त होगी और फिर से वह अपने ज्ञान को प्राप्त करेंगी। इसी समय ब्रह्मऋषि नारद जी का वहां आगमन हुआ। अपने पुत्र सतानंद को उन्होंने ब्रह्मऋषि को सौंपा जो फिर उन्हें महिषी विश्वामित्र के आश्रम में लगे जहाँ उन्होंने समस्त विद्याएं ग्रहण कीं। पुत्री अंजनी तपस्या करने ऋष्यमूक पर्वत पर चली गयीं। शरद्वान जी धनुर्विद्या अभ्यास के लिए पहले ही भगवान् परशुराम के पास जा चुके थे। स्वयं गौतम ऋषी ने भी जब तक अहिल्या पूर्ववत ज्ञान-स्थिति में नहीं आ जातीं तब तक भगवान् शिव शंकर की आराधना के लिए कैलास जाने का प्रण किया। अपनी एक परम शिष्या सुशीला को अहिल्या की सेवा सुश्रुषा करने छोड़ा तथा कैलास को प्रस्थान किया।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड का वर्णन ध्यान देने योग्य है। इस महाकाव्य से अहिल्या की दोष रहितता प्रकट होती है। महाऋषी अगस्त्य कहते हैं कि जब ब्रह्मा ने अहिल्या को महाऋषी गौतम को सौंपा तो इन्द्र का अहिल्या के प्रति ऐसा विचार बलात्कार एवं शारीरिक शोषण को प्रोत्साहित करने वाला था। इस विचार की शोषिता अहिल्या अपने ऊपर हुए इस अत्याचार की ग्लानि के कारण अपने मन की शांति खो बैठी।

सुन्दर देह तो अवश्य रह गई पर वे अद्वितीय सुन्दर भाव खो गये जो एक सुन्दर स्त्री के पास जन्मजात होते हैं। जब अहिल्या ने प्रतिवाद में कहा कि वह अपराधिनी नहीं है तब महाऋषी गौतम ने कहा कि वे उसे पुन: स्वीकार कर लेंगे जब राम उसे अपने स्पर्श से पवित्र करेंगे।

कथा सरित सागर के वर्णनों में अहिल्या की मानसिक अवस्था का हल्का सा संकेत मिलता है। जब महाऋषी गौतम लौटते हैं तो उसे शिला हो जाने का श्राप मिलता है। कथा सरित सागर में वर्णन है कि यहां कोई शरीर पत्थर में नहीं बदला बल्कि सामाजिक बहिष्कार और स्वयं की मानसिक पीड़ा ही इस रूप में प्रायश्चित का संकेत हैं। अहिल्या एक जीती जागती शिला बन कर रह गई थी - भावशून्य, आत्मसम्मान रहित। भगवान् श्री राम ने उन्हें दोषरहित मान कर सम्मान दिया और जब श्री लक्ष्मण ने सम्मान से उनके पैर छुए तब जाकर उन्हें खोया हुआ सामाजिक सम्मान व प्रतिष्ठा पुन: मिली ताकि वे फिर से अपना जीवन सच्चे अर्थों में जी सकें। महाऋषी विश्वामित्र ने बार बार उन्हें 'महाभागा' कहा - गुणों और पवित्रता से ओत–प्रोत। महाऋषी वाल्मिकी के विवरणों में यह कहा गया है कि भगवान् श्री राम ने उनकी आवश्यकता को जाना कि उन्हें उनके चरण रज स्पर्श से मुक्ति मिल सकती है।

यह उनके चरित्र की पवित्रता है। यह उनकी असाधारण सुन्दरता और कालातीत सत्य ही कारण हैं जिसकी वजह से अहिल्या को पांच कन्याओं में प्रथम कन्या का पवित्र व प्रमुख स्थान देने का। महाऋषी विश्वामित्र की दृष्टि में अहिल्या एक पूज्यनीय स्त्री हैं।

अहल्या उद्धार का चित्रण गोस्वामी जी ने बहुत अच्छे ढंग से श्री राम चरित मानस में किया है।

जब भगवान् श्री राम, ताड़का, सुबाहू और अन्य राक्षसों का वध कर मुनिओं के यज्ञों की रक्षा करने के पश्चात सीता माँ के स्वयंवर देखने के लिए

महाऋषी विश्वामित्र जी के साथ जनकपुरी जा रहे थे तो रास्ते में उन्होंने एक आश्रम देखा जो रिक्त सा नज़र आ रहा था।

आश्रम एक दीख मग माहीं, खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी, सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।

"मार्ग में एक आश्रम दिखाई पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी अथवा कोई भी जीव जन्तु नहीं था। पत्थर शिलावत एक स्त्री को देखकर प्रभु ने पूछा। तब मुनि ने विस्तारपूर्वक सब कथा कही।"

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।

"गौतम मुनि की स्त्री अहिल्या शापवश पत्थरवत देह धारण किए बड़े धीरज से आपके चरणकमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर! इस पर कृपा कीजिए।"

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।

"श्री रामजी के पवित्र और शोक को नाश करने वाले चरण रज का स्पर्श पाते ही वह तपोमूर्ति अहिल्या ज्ञानरूप शरीर में प्रकट हो गई। भक्तों को सुख देने वाले श्री रघुनाथजी को देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयीं। अत्यन्त प्रेम के कारण वह अधीर हो गई। उनका शरीर पुलकित हो उठा। मुख से वचन कहने में नहीं आते थे। वह अत्यन्त बड़भागिनी अहिल्या प्रभु के चरणों से लिपट गई और उनके दोनों नेत्रों से जल (प्रेम और आनंद के आँसुओं) की धारा बहने लगी।"

धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई।
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई।

" कृपा से भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणी से उन्होंने (इस प्रकार) स्तुति प्रारंभ की, "हे ज्ञान से जानने योग्य श्री रघुनाथजी! आपकी जय हो! मैं (सहज ही) अपवित्र स्त्री हूँ, और हे प्रभो! आप जगत को पवित्र करने वाले, भक्तों को सुख देने वाले और रावण के शत्रु हैं। हे कमलनयन! हे संसार (जन्म-मृत्यु) के भय से छुड़ाने वाले! मैं आपकी शरण आई हूँ, (मेरी) रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।"

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।

"मुनि ने जो मुझे शाप दिया सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह (करके) मानती हूँ कि जिसके कारण मैंने संसार से छुड़ाने वाले श्री हरि (आप) को नेत्र भरकर देखा। इसी (आपके दर्शन) को शंकरजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो! मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है। हे नाथ ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मन रूपी भौंरा आपके चरण-कमल की रज के प्रेमरूपी रस का सदा पान करता रहे।"

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी।

“जिन चरणों से परमपवित्र देवनदी गंगाजी प्रकट हुई, जिन्हें शिवजी ने सिर पर धारण किया और जिन चरणरज को ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु हरि (आप) ने उसी रज को मेरे सिर पर धारण कराया।” इस प्रकार (स्तुति करती हुई) बार बार भगवान के चरणों में गिरकर, जो मन को बहुत ही अच्छा लगा, उस वर को पाकर अथवा कोई गौतम की स्त्री अहिल्या आनंद में भरी हुई पतिलोक को चली गई।“

इस तरह इस के पश्चात फिर से अहिल्या जी का गौतम महाऋषी से पुनर्मिलन हुआ।

अध्याय २ - द्वितीय पंचकन्या तारा

किष्किंधा की महारानी और किष्किंधा सम्राट बाली की पत्नी तारा का पंचकन्याओं में द्वितीय स्थान है। ग्रंथों के अनुसार देवगुरु बृहस्पति की पौत्री तारा समुद्र मंथन के समय निकली मणियों में से एक मणि थी। तारा इतनी सुन्दर थी कि देवता और असुर सभी उनसे विवाह करना चाहते थे।

किष्किंधा के सम्राट बाली एवं उनके छोटे भ्राता सुग्रीव किष्किंधा के युवराज थे। बाली और सुग्रीव के जन्म को लेकर एक रोचक प्रसंग पौराणिक कथाओं है। ऐसा कहा जाता है कि बाली और सुग्रीव इन्द्र और अरुण के पुत्र थे। इन्द्र देवताओं के राजा हैं और अरुण सूर्यदेव के सारथी। ऐसी मान्यता है कि सूर्य देव प्रतिदिन सात श्वेत घोड़ों के रथ में सवार होकर सुबह आते हैं जिसका संचालन अरुण करते है। एक बार की बात है कि महाऋषी विश्वामित्र जी ने सूर्यदेव को यह शाप दे दिया कि वह पृथ्वी के ऊपर प्रकाशमान नहीं होंगे। इस शाप से प्रभावित सूर्यदेव ने रथ की सवारी

बन्द कर दी अतः अरूण के पास कोई काम नहीं रहा। अरुण सदैव स्वर्ग लोक में सूर्य देव के साथ वहां की अप्सराओं के दिव्य नृत्य देखने के आदी थे। अब उनका नृत्य देखना भी बंद हो गया। उन्होंने कुछ विचार कर एक युवती का वेष धारण किया और अप्सराओं का नृत्य देखने इंद्रदेव की सभा में पहुँच गए। इंद्रदेव, जो कि नृत्य का आनन्द ले रहे थे, उन्होंने अरुण को अत्यंत सुन्दर रूपवती युवती के रूप में देखा और उन पर मोहित हो गये। दोनों ने समागम किया और कालांतर में अरुण ने बाली एवं सुग्रीव को जन्म दिया। दोनों का पालन पोषण गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या ने किया। इसी कारण कुछ ग्रन्थ उनको महाऋषी गौतम के पुत्र भी बताते हैं।

बाली और सुषेण (रावण के वैद्यराज जिन्होंने लक्ष्मण की संजीवनी बूटी द्वारा प्राण रक्षा की) समुद्र मंथन में देवताओं के सहायक के तौर पर उपस्थित थे। आज से हजारों वर्षों पूर्व देवताओं और असुरों ने मिलकर समुद्र मंथन किया। समुद्र मंथन के दौरान १४ मणियों में से एक तारा भी थीं। जब उन्होंने तारा को देखा तो दोनों उनकी सुंदरता से मुग्ध हो गए। उन दोनों में उन्हें पत्नी बनाने की होड़ लगी।

तारा को लेकर दोनों में युद्ध की स्थिति निर्मित हो चली तब भगवाण विष्णु ने मध्यस्थता कर इसका समाधान निकाला। उन्होंने कहा, "दोनों तारा के पास खड़े हो जाओ"। बाली तारा के दाहिनी ओर तथा सुषेण उसके बाई ओर खड़े हो गए। तब श्री विष्णु ने कुछ देर दोनों को देखने के बाद फैसला सुनाया कि धर्म नीति के अनुसार विवाह के समय कन्या के दाहिनी ओर उसका होने वाला पति तथा बाई ओर कन्यादान करने वाला पिता खड़ा होता है। अतः बाली तारा के पति तथा सुषेण उनके पिता घोषित किये जाते है। इस तरह इस निर्णय के अनुसार बाली ने सुंदर तारा से विवाह किया।

बाली को उनके पिता इन्द्रदेव से एक स्वर्ण हार प्राप्त हुआ जिसको ब्रह्मा जी ने मंत्रयुक्त करके यह वरदान दिया था कि इसको पहनकर वह जब भी रणभूमि में अपने दुश्मन का सामना करेगा तो उसके दुश्मन की आधी

शक्ति क्षीण हो जायेगी और बाली को प्राप्त हो जायेगी। इस कारण से बाली लगभग अजेय थे। वाल्मीकि रामायण में ऐसा प्रसंग आता है कि एक बार जब बाली संध्यावन्दन के लिए जा रहे थे तो आकाश से ब्रह्मऋषी नारद मुनि भी उसी मार्ग से जा रहे थे। बाली ने उनका अभिवादन किया तो ब्रह्मऋषी नारद ने बताया कि वह लंका जा रहे हैं जहाँ लंकापति रावण ने देवराज इन्द्र को परास्त करने के उपलक्ष में भोज का आयोजन किया है। चन्चल स्वभाव के ब्रह्मऋषी नारद, जिन्हें सर्वज्ञान है, ने बाली से चुटकी लेने की कोशिश की और कहा कि अब तो पूरे ब्रह्माण्ड में केवल रावण का ही आधिपत्य है और सारे प्राणी, यहाँ तक कि देवतागण भी उसे ही शीश नवाते हैं। बाली ने कहा कि रावण ने अपने वरदान और अपनी सेना का प्रयोग उनको दबाने में किया है जो निर्बलता का प्रतीक है । लेकिन मैं उनमें से नहीं हूँ यह बात आप रावण को स्पष्ट कर दें। सर्वज्ञानी ब्रह्मऋषी नारद ने यह बात रावण को जा कर बताई, जिसे सुनकर रावण क्रोधित हो गया। उसने अपनी सेना तैयार करने के आदेश दे डाले। ब्रह्मऋषी नारद ने उससे भी चुटकी लेते हुये कहा कि एक वानर के लिए यदि आप पूरी सेना लेकर जायेंगे तो आपके सम्मान के लिए यह उचित नहीं होगा। रावण तुरन्त मान गया और अपने पुष्पक विमान में बैठकर बाली के पास पहुँच गया। बाली उस समय संध्यावन्दन कर रहे थे। बाली की स्वर्णमयी कांति देखकर रावण घबरा गया और बाली के पीछे से वार करने की चेष्टा की। बाली अपनी पूजा अर्चना में तल्लीन थे लेकिन फिर भी उन्होंने उसे अपनी पूँछ से पकड़कर और उसका सिर अपने बगल में दबाकर पूरे विश्व में घुमाया। उन्होंने ऐसा इसलिए किया कि संपूर्ण विश्व के प्राणी रावण को इस असहाय अवस्था में देखें और उनके मन से उसका भय निकल जाये। इसके पश्चात् रावण ने अपनी पराजय स्वीकार की और बाली की ओर मैत्री का हाथ बढ़ाया जिसे बाली ने स्वीकार कर लिया।

बाली के बारे में यह कहा जाता है कि यदि कोई उन्हें द्वंद्व के लिए ललकारे तो वह तुरन्त तैयार हो जाते थे। माया नामक असुर स्त्री के दो पुत्र थे - मायावी तथा दुंदुभि। मायावी की बाली से बड़ी पुरानी शत्रुता थी। मायावी

एक रात किष्किन्धा आया और बाली को द्वंद्व के लिए ललकारा। पत्नी तारा तथा शुभचिन्तकों के मना करने के बाद भी बाली उस असुर के पीछे भागे। साथ में सुग्रीव भी उनके साथ युद्ध में गए। भागते भागते मायावी पृथ्वी के नीचे बनी एक कन्दरा में घुस गया। बाली भी उसके पीछे-पीछे गए। जाने से पहले उन्होंने सुग्रीव से कहा कि जब तक बाली इस असुर का वध कर वापस नहीं लौटें तब तक सुग्रीव उस कन्दरा के मुख पर खड़े होकर पहरा दे। एक वर्ष से अधिक अन्तराल के पश्चात कन्दरा के मुख से रक्त बहता हुआ बाहर आया। सुग्रीव ने असुर की चीत्कार तो सुनी परन्तु बाली की नहीं। यह समझकर कि उनके अग्रज रण में मारे गए, सुग्रीव ने उस कन्दरा के मुँह को एक शिला से बन्द कर दिया और वापस किष्किन्धा आ गए। उन्होंने यह दुखद समाचार सबको सुनाया। मंत्रियों ने सलाह कर सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दिया। कुछ समय पश्चात बाली प्रकट हुए और अपने अनुज को राजा देख बहुत कुपित हुए। सुग्रीव ने उन्हें समझाने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु बाली ने उसकी एक न सुनी और सुग्रीव के राज्य तथा पत्नी रूमा को हड़पकर उन्हें देश निकाला दे दिया। डर के कारण सुग्रीव ने ऋष्यमूक पर्वत में शरण ली जहाँ शाप के कारण बाली नहीं जा सकते थे।

बाली ऋष्यमूक पर्वत पर क्यों नहीं जा सकते थे इस के पीछे भी एक पौराणिक कथा है। माया असुर के दूसरे पुत्र दुंदुभि को अपने बल पर इतना दंभ हो गया कि उसने समुद्र देव को द्वंद्व युद्ध के लिये ललकारा। हालाँकि समुद्र देव उसका दंभ वहीं समाप्त कर सकते थे लेकिन उन्होंने कहा कि ऐसे वीर से वह द्वंद्व करने में असमर्थ हैं। उन्होंने दुंदुभि को पर्वतों के राजा हिमवान के पास जाने को कहा। दुंदुभि हिमवान के पास गया तो हिमवान ने भी उससे युद्ध करने के लिए मना कर दिया तथा उससे इन्द्र के पुत्र बाली को ललकारने का सुझाव दिया जो कि किष्किन्धा के राजा थे। दुंदुभि तब किष्किन्धा के द्वार में गया और बाली को द्वंद्व के लिए ललकारा। बाली ने पहले तो दंभी दुंदुभि को समझाने का प्रयास किया परन्तु जब वह नहीं माना तो बाली द्वंद्व के लिए सहमत हो गए। दुंदुभि को बड़ी सरलता से

हराकर उसका वध कर दिया। इसके पश्चात् बाली ने दुंदुभि के निर्जीव शरीर को उछालकर एक ही झटके में एक योजन दूर फेंक दिया। शरीर से टपकती रक्त की बूंदें महर्षि मतङ्ग के आश्रम में गिरीं जो कि ऋष्यमूक पर्वत में स्थित था। महिषी कि तपस्या में इससे भंग हुआ। क्रोधित महाऋषी मतङ्ग ने बाली को शाप दे डाला कि यदि बाली कभी भी उनके आश्रम के एक योजन के अंदर आएगा तो वह मृत्यु को प्राप्त होगा। इस कारण बाली ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं जाते थे।

प्रतिबिंबित माँ सीता के रावण द्वारा हरण के बाद जब श्री राम माँ सीता को खोजते हुए ऋष्यमूक पर्वत पहुंचे और हनुमान जी ने उनकी मित्रता सुग्रीव से कराई तब भगवान् श्री राम ने बाली का बध किया और सुग्रीव का राज्याभिषेक कराया।

रामायण के अनुसार जब श्री राम के कहने पर सुग्रीव ने बाली को ललकारा तब तारा समझ गई कि सुग्रीव के पास स्वयं से बाली का सामना करने की सामर्थ्य नहीं है, इसलिए हो ना हो उसे श्री राम का समर्थन प्राप्त हुआ है। ब्रह्मा की पोत्री महारानी तारा की दिव्यदृष्टी ने यह अवगत करा दिया कि श्री राम भगवान् विष्णु के अवतार हैं। अतः उन्होंने बाली के सुग्रीव से द्वन्दयुद्ध का पूर्णतः विरोध किया। बाली को समझाने की कोशिश भी की लेकिन बाली ने समझा कि सुग्रीव को बचाने के लिए तारा उसका पक्ष ले रही है। बाली ने तारा का त्याग कर दिया और सुग्रीव से युद्ध करने चला गया।

इस समस्त कथा का श्री गोस्वामी जी ने श्री रामचरितमानस के किष्किंधा काण्ड में बड़ा ही अच्छा चित्रण किया है।

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाइ। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥

"(सुग्रीव ने कहा-) हे नाथ! बाली और मैं दो भाई हैं। हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो! मय दानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँव में आया।"

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥

"उसने आधी रात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा (ललकारा)। बाली शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाई के संग चला गया।"

गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥

"वह मायावी एक पर्वत की गुफा में जा घुसा। तब बाली ने मुझे समझाकर कहा, "तुम एक पखवाड़े (पंद्रह दिन) तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनों में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया।"

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥

"हे खरारि! मैं वहाँ महीने भर तक रहा। वहाँ (उस गुफा में से) रक्त की बड़ी भारी धारा निकली। तब (मैंने समझा कि) उसने बाली को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। इसलिए मैं वहाँ (गुफा के द्वार पर) एक शिला लगाकर भाग आया।"

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥

"मंत्रियों ने नगर को बिना स्वामी (राजा) का देखा तो मुझको बलपूर्वक राज्य दे दिया । बाली उस राक्षस को मारकर घर आ गया । मुझे (राजसिंहासन पर) देखकर उसने हृदय में भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना) । (उसने समझा कि राज्य के लोभ से मैं ही गुफा के द्वार पर शिला रख आया था, जिससे बाली बाहर न निकल सके और यहाँ आकर राजा बन बैठा) ।"

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हसि सर्बसु अरु नारी॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥

"उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व एवं मेरी स्त्री को भी छीन लिया । हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भय से समस्त लोकों में बेहाल होकर फिरता रहा ।"

इहाँ साप बस आवत नाहीं । तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥
सुन सेवक दुःख दीनदयाला फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥

"वह शाप के कारण यहाँ नहीं आता । तो भी मैं मन में भयभीत रहता हूँ । सेवक का दुःख सुनकर दीनों पर दया करने वाले श्री रघुनाथजी की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं ।"

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

"(उन्होंने कहा-) हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाण से बाली को मार डालूँगा । ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी उसके प्राण न बचेंगे ।"

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

"जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने।"

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

"जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे।"

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

"देने-लेने में मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं।"

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

"जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है, हे भाई! (इस तरह) जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है।"

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

“मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र, ये चारों शूल के समान पीड़ा देने वाले हैं। हे सखा! मेरे बल पर अब तुम चिंता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)।“

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

“सुग्रीव ने कहा, “हे रघुवीर! सुनिए, बाली महान् बलवान् और अत्यंत रणधीर है।” फिर सुग्रीव ने श्री रामजी को दुंदुभि राक्षस की हड्डियाँ व ताल के वृक्ष दिखलाए। श्री रघुनाथजी ने उन्हें बिना ही परिश्रम के (सरलता से) ढहा दिया।“

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥
बार-बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥

“श्री रामजी का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गई और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बाली का वध अवश्य करेंगे। वे बार बार चरणों में सिर नवाने लगे। प्रभु को पहचानकर सुग्रीव मन में हर्षित हो रहे थे।“

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥

“जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे ये वचन बोले, “हे नाथ! आपकी कृपा से अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, संपत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा।”

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख, दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥

"क्योंकि आपके चरणों की आराधना करने वाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख-संपत्ति आदि) राम भक्ति के विरोधी हैं। जगत् में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख (आदि द्वंद्व) हैं, सब के सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तव में) नहीं हैं।"

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥
सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥

"हे श्री रामजी! बाली तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपा से शोक का नाश करने वाले आप मुझे मिले और जिसके साथ अब स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर उसे समझकर मन में संकोच होगा (कि स्वप्न में भी मैं उससे क्यों लड़ा)।"

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥

"हे प्रभो अब तो इस प्रकार कृपा कीजिए कि सब छोड़कर दिन रात मैं आपका भजन ही करूँ।" सुग्रीव की वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्य को देखकर) हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री रामजी मुस्कुराकर बोले।"

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

"तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है, परंतु हे सखा! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात् बालि मारा जाएगा और तुम्हें राज्य मिलेगा)।" (काकभुशुण्डिजी कहते हैं) हे पक्षियों के राजा गरुड़! नट (मदारी) के बंदर की तरह श्री रामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं।"

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥

"तदनन्तर सुग्रीव को साथ लेकर और हाथों में धनुष-बाण धारण करके श्री रघुनाथजी चले। तब श्री रघुनाथजी ने सुग्रीव को बाली के पास भेजा। वह श्री रामजी का बल पाकर बाली के निकट जाकर गरजा।"

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥

"बाली सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा। उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ! सुनिए, "सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं।"

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

"वे कोसलाधीश दशरथजी के पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राम में काल को भी जीत सकते हैं।"

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥

"बाली ने कहा, " हे भीरु! (डरपोक) प्रिये! सुनो, श्री रघुनाथजी समदर्शी हैं। जो कदाचित् वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा)।"

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥

"ऐसा कहकर वह महान् अभिमानी बाली सुग्रीव को तिनके के समान जानकर चला। दोनों भिड़ गए। बाली ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोर से गरजा।"

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥

"तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसे की चोट उसे वज्र के समान लगी (सुग्रीव ने आकर कहा-) हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बाली मेरा भाई नहीं है, काल है।"

एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥

"(श्री रामजी ने कहा-) तुम दोनों भाइयों का एक सा ही रूप है। इसी भ्रम से मैंने उसको नहीं मारा। फिर श्री रामजी ने सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही।"

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

"तब श्री रामजी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्री रघुनाथजी वृक्ष की आड़ से देख रहे थे।"

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥

"सुग्रीव ने बहुत से छल-बल किए, किंतु (अंत में) भय मानकर हृदय से हार गया। तब श्री रामजी ने तानकर बाली के हृदय में बाण मारा।"

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥

"बाण के लगते ही बाली व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, किंतु प्रभु श्री रामचंद्रजी को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान् का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाए हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिए हैं और धनुष चढ़ाए हैं।"

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥

"बाली ने बार-बार भगवान् की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया। प्रभु को पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदय में प्रीति थी, पर मुख में कठोर वचन थे। वह श्री रामजी की ओर देखकर बोला।"

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

"हे गोसाईं! आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह (छिपकर) मारा? मैं बैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा?"

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥

"(श्री रामजी ने कहा-) हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या, ये चारों पुत्री समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।"

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

"हे मूढ़! तुझे अत्यंत अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा।"

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥

"(बाली ने कहा) हे श्री रामजी! सुनिए, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकी। हे प्रभो! अंतकाल में आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा?"

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

"बाली की अत्यंत कोमल वाणी सुनकर श्री रामजी ने उसके सिर को अपने हाथ से स्पर्श किया (और कहा) मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ। तुम प्राणों को रखो। बाली ने कहा, "हे कृपानिधान! सुनिए।"

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

"मुनिगण जन्म-जन्म में (प्रत्येक जन्म में) (अनेकों प्रकार का) साधन करते रहते हैं। फिर भी अंतकाल में उन्हें 'राम' नहीं याद आता (उनके मुख से राम नाम नहीं निकलता)। जिनके नाम के बल से शंकर जी काशी में सबको समान रूप से अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं।"

मम लोचन गोचर सोई आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥

"वह श्री रामजी स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गए हैं। हे प्रभो! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा।"

सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥

"श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरंतर जिनका गुणगान करती रहती हैं तथा प्राण और मन को जीतकर एवं इंद्रियों को (विषयों के रस से सर्वथा) नीरस बनाकर मुनिगण ध्यान में जिनकी कभी क्वचित् ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यंत अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो, परंतु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काटकर उससे बबूर के बाड़ लगाएगा (अर्थात् पूर्णकाम बना देने वाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा?)"

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये॥

"हे नाथ! अब मुझ पर दयादृष्टि कीजिए और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिए। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहीं श्री रामजी (आप) के चरणों में प्रेम करूँ। हे कल्याणप्रद प्रभो! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है। इसे स्वीकार कीजिए और हे देवता और मनुष्यों के नाथ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइए।"

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

"श्री रामजी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बाली ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने।"

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥

"श्री रामचंद्रजी ने बाली को अपने परम धाम भेज दिया। नगर के सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बाली की स्त्री तारा अनेकों प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की सँभाल नहीं है।"

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

"तारा को व्याकुल देखकर श्री रघुनाथजी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। (उन्होंने कहा-) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु, इन पाँच तत्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है।"

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

"वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिए रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान् के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया।"

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥

"(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! स्वामी श्री रामजी सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्री रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बाली का सब मृतक कर्म किया।"

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥

"तब श्री रामचंद्रजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्री रघुनाथजी की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्री रघुनाथजी के चरणों में मस्तक नवाकर चले।"

लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥

"लक्ष्मणजी ने तुरंत ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।"

उमा राम सम हत जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥

"हे पार्वती! जगत में श्री रामजी के समान हित करने वाला गुरु, पिता, माता, बंधु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही सब प्रीति करते हैं।"

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥

"जो सुग्रीव दिन रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत से घाव हो गए थे और जिसकी छाती चिंता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को उन्होंने वानरों का राजा बना दिया। श्री रामचंद्रजी का स्वभाव अत्यंत ही कृपालु है।"

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥

"जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभु को त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्ति के जाल में फँसें? फिर श्री रामजी ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से उन्हें राजनीति की शिक्षा दी।"

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥

"फिर प्रभु ने कहा- हे वानरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गई। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वत पर टिक रहूँगा।"

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥

"तुम अंगद सहित राज्य करो। मेरे काम का हृदय में सदा ध्यान रखना। तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आए, तब श्री रामजी प्रवर्षण पर्वत पर जा टिके।"

इस सूझ बूझ, पतिव्रत्य, भगवत्प्रेम, अहंकारशून्य, विदूषी, दूरंदेशी, आत्मविश्वासी एवं दिव्यदृष्टी के कारण महाऋषी वेद व्यास जी ने महारानी तारा को द्वितीय पंचकन्या के रूप में पूजा है।

भगवान् श्री राम के कहने पर एवं पुत्र अंगद के भविष्य को ध्यान में रखते हुए और उसे पिता की छाया से वंचित न करने की चाह से ही वह अपने ही पति के भाई सुग्रीव की सहगामिनी भी बन गई। सुग्रीव पत्नी के रूप में भी उनका महान चरित्र देखिये। जब राज्याभिषेक के एक मास पश्चात भी सुग्रीव भगवान् श्री राम के पास वापस ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं आये और माँ सीता की खोज विसार दी और जब भगवान् श्री राम ने लक्ष्मण जी को सुग्रीव को लाने भेजा और श्री लक्ष्मण किश्किंधा के अन्त:पुर में अचानक धड़धड़ाते हुए क्रोध में प्रविष्ट हुए तब तारा ही थी जिसे सुग्रीव ने क्रोधी शेषनाग के अवतार लक्ष्मण को संभालने के लिये भेजा था। तारा ने श्री लक्ष्मण का अर्धोन्मिलीत नेत्रों द्वारा क्रोध शान्त किया तथा उन्हें अस्त्रविहीन कर दिया। उन्होंने कोमलता से शेषनाग अवतार श्री लक्ष्मण जी को अवगत कराया कि वे कामावेग की असीमित शक्ति से अज्ञात हैं, जो कि बड़े से बड़े ऋषियों को भी डिगा देती है। सुग्रीव तो एक किंचित वानर मात्र है। तारा निर्भीक होकर कहती रही कि यह भर्त्सना न्यायोचित नहीं है और उन्होंने विस्तार से बताया कि सेना को एकत्रित करने का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है, आप क्रोधित न हो। इस तरह उन्होंने अपने पति के प्राणों की रक्षा की।

गोस्वामी जी ने इस का सुन्दर रूप से वर्णन किया है।

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालुह जीति निमिष महुँ आनौं॥

“वर्षा बीत गई, निर्मल शरद्ऋतु आ गई, परंतु हे तात! सीता की कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो काल को भी जीतकर पल भर में जानकी को ले आऊँ।“

कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥

“कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिए सुग्रीव ने भी मेरी सुध भुला दी।“

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥

“जिस बाण से मैंने बाली को मारा था, उसी बाण से कल उस मूढ़ को मारूँ! (शिवजी कहते हैं) हे उमा! जिनकी कृपा से मद और मोह छूट जाते हैं उनको कहीं स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है? (यह तो लीला मात्र है)।“

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाई गहे कर बाना॥

“ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीला रहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मणजी ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में ले लिए।“

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥

“तब दया की सीमा श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है)।“

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

"यहाँ (किष्किन्धा नगरी में) पवनकुमार श्री हनुमान्‌जी ने विचार किया कि सुग्रीव ने श्री रामजी के कार्य को भुला दिया। उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया। (साम, दान, दंड, भेद) चारों प्रकार की नीति कहकर उन्हें समझाया।"

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥

"हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सुग्रीव ने बहुत ही भय माना। (और कहा) विषयों ने मेरे ज्ञान को हर लिया। अब हे पवनसुत! जहाँ तहाँ वानरों के यूथ रहते हैं, वहाँ दूतों के समूहों को भेजो।"

कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई॥
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥

"और कहला दो कि एक पखवाड़े में (पंद्रह दिनों में) जो न आ जाएगा, उसका मेरे हाथों वध होगा। तब हनुमान्‌जी ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके -

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥
एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥

सबको भय, प्रीति और नीति दिखलाई। सब बंदर चरणों में सिर नवाकर चले। इसी समय लक्ष्मणजी नगर में आए। उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ तहाँ भागे।"

धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥

"तदनन्तर लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगर को जलाकर अभी राख कर दूँगा। तब नगरभर को व्याकुल देखकर बालीपुत्र अंगदजी उनके पास आए।"

चर नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥

"उन्होंने अनेक प्रकार से उनकी विनती की। तब श्री लक्ष्मण जी ने उन्हें अभय दान दिया। श्री लक्ष्मण जी को क्रोध में जान सुग्रीव डर गए और हनुमान जी से कहने लगे।"

सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥

"हे हनुमान् सुनो, तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझाओ (समझा बुझाकर शांत करो)। हनुमान्‌जी ने तारा सहित जाकर लक्ष्मणजी के चरणों की वंदना की और प्रभु के सुंदर यश का बखान किया।"

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥

"वे विनती करके उन्हें महल में ले आए तथा चरणों को धोकर उन्हें पलँग पर बैठाया। तब वानरराज सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया और लक्ष्मणजी ने हाथ पकड़कर उनको गले से लगा लिया।"

नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा॥

"(सुग्रीव ने कहा) हे नाथ! विषय के समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है (फिर मैं तो विषयी

जीव ही ठहरा)। सुग्रीव के विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार से समझाया।"

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥

"तब पवनसुत हनुमान्‌जी ने जिस प्रकार सब दिशाओं में दूतों के समूह गए थे वह सब हाल सुनाया।"

हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥

"तब अंगद आदि वानरों को साथ लेकर और श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी को आगे करके (अर्थात्‌ उनके पीछे पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले, और जहाँ रघुनाथजी थे वहाँ आए।"

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी॥ नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया॥ छूटइ राम करहु जौं दाया॥

"श्री रघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीव ने कहा- हे नाथ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव! आपकी माया अत्यंत ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम! तभी यह छूटती है।"

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी॥ मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥

"हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश में हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अत्यंत कामी बंदर हूँ। स्त्री का नयन बाण जिसको नहीं लगा, जो भयंकर क्रोध रूपी अँधेरी रात में भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता)।"

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥

"और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथजी! वह मनुष्य आप ही के समान है। ये गुण साधन से नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं।"

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतनु करह मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥

"तब श्री रघुनाथजी मुस्कुराकर बोले- हे भाई! तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपाय से सीता की खबर मिले।"

एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥

"इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरों के यूथ (झुंड) आ गए। अनेक रंगों के वानरों के दल सब दिशाओं में दिखाई देने लगे।"

इन कारणों से तारा एक वह महान पात्र हैं जिन्होंने अपने पति को समय रहते चेताया। उन्होंने उनकी राय न मानने पर अन्ततः पर्याप्त परिणाम भुगते भी। फिर अपने पति की मृत्यु के बाद पति के भाई तथा शत्रु को पति रूप में स्वीकार भी किया ताकि वे अपने राज्य को सुरक्षित रख सकें और अयोध्या के मित्र राष्ट्र बनकर रहें, और उनका राजकार्यों में अधिकार पूर्ववत बना रहे। इस तरह के चरित्र बाली तारा क्यों न प्रातः स्मरणीय हों?

अध्याय 3 - तृतीय पंचकन्या मंदोदरी

महाऋषी वेद व्यास जी के अनुसार महारानी मंदोदरी तृतीय पंचकन्या के रूप में पुज्यनीय हैं। महारानी मंदोदरी असुर सम्राट रावण की धर्मपत्नी थीं। महारानी तारा की भांति महारानी मंदोदरी ने अपने पति रावण के हर बुरे कदम पर खेद प्रकट किया और उसे हर बुरा काम करने से रोकने का प्रयास किया। महारानी मंदोदरी को एक ऐसी स्त्री के रूप में जाना जाता है जो हमेशा सत्य के मार्ग पर चली।

पौराणिक कथाओं के अनुसार एक बार मधुरा नामक एक अप्सरा कैलाश पर्वत पर पहुंची। देवी पार्वती को वहां ना पाकर वह भगवान शिव को आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगी। जब देवी पार्वती वहां पहुंचीं तो भगवान शिव की देह की भस्म को मधुरा के शरीर पर देखकर वह अत्यंत क्रोधित हो गई और क्रोध में आकर उन्होंने मधुरा को मेढक बनने का श्राप दे दिया। मधुरा के बहुत विनय करने पर एवं अपना अपराध स्वीकार करने पर दयामयी माँ पार्वती ने मधुरा को क्षमा करते हुए कहा कि श्राप तो वापस नहीं लिया जा सकता और उसके कृत्य का उसको कुछ तो परिणाम भोगना ही पडेगा लेकिन केवल आने वाले १२ सालों तक ही वह मेढक के रूप में एक कुएं में ही रहेगी। और इस प्रकार मधुरा का निवास अगले १२ वर्षों के लिए यह एक कुआ हो गया।

उसी समय असुरों के सम्राट मय दानव हुए और उनकी पत्नी अप्सरा हेमा हुई। कथा के अनुसार असुरों के देवता मयासुर और उनकी अप्सरा पत्नी हेमा के दो पुत्र थे लेकिन वे चाहते थे कि उनकी एक पुत्री भी हो। इसी इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन दोनों ने भगवान् शिव शंकर की कठोर तपस्या करनी शुरू की ताकि ईश्वर उनसे प्रसन्न होकर एक पुत्री दे दें। संयोग कहिये या भगवान् की इक्षा, उनकी तपस्या स्थली इस कुए के समीप ही थी। १२ वर्षों तक उन्होंने शिव शंकर भगवान् की घोर तपस्या की। इसी बीच मधुरा की कठोर तपस्या के भी १२ साल भी पूर्ण हो गए।

जैसे ही १२ वर्ष पूर्ण हुए मधुरा अपने असल स्वरूप में आ गई और कुएं से बाहर आने के लिए वह मदद के लिए पुकारने लगी। हेमा और मायासुर वहीं तप में लीन थे अतः मधुरा की आवाज सुनकर दोनों कुएं के पास गए और उसे बचा लिया। उन दोनों ने मधुरा को गोद ले लिया और उसका नाम रखा मंदोदरी।

मंदोदरी को अपने पूर्व जन्म की पूर्ण स्मृति थी। वह भगवान शिव शंकर और माँ पार्वती की अनन्य भक्त रहीं। पौराणिक कथाओं में यह कई बार आया है कि वह प्रति दिन शिव पार्वती मंदिर अवश्य जाती थी।

एक दिन रावण मायासुर से मिलने मायासुर की राजधानी मंडोर पहुंचा। वहां मंदोदरी को देखते ही रावण उसपर मोहित हो गया और मायासुर से मंदोदरी का हाथ मांग लिया। रावण का प्रताप और शौर्य देख कर मायासुर तुरंत ही उससे मंदोदरी का विवाह करने को तैयार हो गया। ऐसी मान्यता है कि मंदोदरी हृदय से रावण से विवाह नहीं करना चाहती थीं क्योंकि उनको रावण के दुष्ट एवं अनाचारी होने का पता था। केवल अपनी पिता की बात रखते हुए उन्होंने रावण से विवाह करना स्वीकार किया। रावण और मंदोदरी का विवाह पूरे विधि विधान के साथ मंडोर में हुआ।

पिता ऋषी विश्रवा ने रावण को लंकापुरी भेंट स्वरुप दी। लंकापुरी को रावण ने अपनी राजधानी बनाया और अपने साम्राज्य का विस्तार करने लगा। अपने प्रताप से उसने अपना साम्राज्य तीनों लोकों तक बढ़ा लिया।

कुछ पौराणिक कथाएं लंकद्वीप के निर्माण का कारण माँ पार्वती को बताती हैं जिसको भगवान् शिव शंकर ने ऋषी विश्रवा को दान में दे दिया था।

एक बार की बात है देवी पार्वती जी का मन हुआ कि उनके पास भी एक महल होना चाहिए। उन्हें महसूस हुआ कि सभी देव अपने महलों में रहते हैं तो देवों के देव महादेव को भी महल में रहना चाहिए। यह सोचकर देवी पार्वती महादेव से हठ करने लगी कि आपको भी महल में रहना चाहिए और आपका महल इंद्र के महल से उत्तम और भव्य होना चाहिए।

महादेव ने देवी पार्वती को समझाने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु देवी पार्वती ने उनकी एक न सुनी और वह हठ करने लगी कि उन्हें ऐसा महल चाहिए जो तीनों लोकों में कहीं न हो। महादेव ने देवी पार्वती को समझाया

कि हम योगी हैं, हम ज्यादा देर महल में नहीं रह पाएंगे। महल में रहने के बड़े नियम विधान होते हैं। हमारे लिए महल उचित नहीं है।

देवी पार्वती पर भगवान शिव की बातों का कोई असर नहीं हो रहा था। वह अपने हठ पर टिकी रही। अंत में हारकर भगवान शिव ने विश्वकर्मा जी को बुलाया। उन्होंने विश्वकर्मा जी को बुला कर कहा कि वह एक ऐसा महल बनाए जिसकी सुंदरता की बराबरी का महल त्रिभुवन में कहीं न हो और वह महल न तो धरती पर हो न जल में।

भगवान शिव के कथन पर विश्वकर्मा एक ऐसी जगह की खोज करने लगे जो भगवान शिव की आज्ञानुसार हो। भ्रमण करते हुए उन्हें एक ऐसी जगह दिखी जो चारों ओर से पानी से ढकी हुई थी। बीच में तीन सुन्दर पर्वत दिख रहे थे। उस पर्वत पर तरह-तरह के फूल और वनस्पति थे। यह लंका थी। विश्वकर्मा जी ने उस स्थान के बारे में देवी पार्वती को बताया। उस स्थान की सुंदरता के बारे में सुनकर देवी पार्वती बहुत प्रसन्न हुई तथा उन्होंने विश्वकर्मा जी को एक विशाल नगर के ही निर्माण का आदेश दे दिया। विश्वकर्मा जी ने अपनी कला का परिचय देते हुए वहां सोने की अद्भुत नगरी बना दी।

सोने का महल बनने के बाद पार्वती जी ने गृह प्रवेश को मुहूर्त निकलवाया। विश्रवा ऋषि को आचार्य नियुक्त किया गया। सभी देवताओं और ऋषियों को निमंत्रण भेजा गया। सभी देवताओं ने महल की बहुत प्रशंसा की।

गृहप्रवेश के बाद महादेव ने आचार्य से दक्षिणा मांगने को कहा। महादेव ने अपनी माया से विश्रवा के मन में उस नगरी के लिए लालच भर दिया था। महादेव की माया के कारण आचार्य ने दक्षिणा में लंका को ही मांग लिया। लंका दान में देने के बाद पार्वती जी को विश्रवा की इस धृष्टता पर बहुत क्रोध आया। उन्होंने क्रोध में आकर उन्हें श्राप दे दिया कि तूने महादेव की सरलता का लाभ उठाकर मेरे प्रिय महल को हड़प लिया है। महादेव का ही

अंश एक दिन उस महल को जलाकर भस्म कर देगा और उसके साथ ही तुम्हारे कुल का विनाश आरंभ हो जाएगा। इसी श्राप के कारण शिव के अवतार हनुमान जी ने लंका जलाई और विश्रवा के पुत्र रावण, कुंभकर्ण और कुल का विनाश हुआ। श्रीराम की शरण में होने से विभीषण बच गए।

महाकवि पंडित सोमनाथ शर्मा जी ने इस कथा को सुन्दर काव्य का रूप दिया है।

डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।
शिव शंकर महादेव त्रिलोचन कोई कहे त्रिपुरारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

शिव हो कर के ही तो तुमने इस जग का कल्याण किया।
अमृत के बदले में खुद ही तुमने तो विषपान किया।
दूज का चंद्र बिठाया माथे गंगा की जटाओं में।
पर्वत राज की पुत्री के संग विचरे सदा गुफ़ाओं में।
सचमुच हो कैलाशपति नहीं कोई चार दीवारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

तेरे ही परिवार की उपमा भूमिजन ऐसे गाते हैं।
सिंह-बैल पशु होकर हमको प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं।
जहरीले सब साँप और बिच्छू अंग अंग लिपटाये हैं।
जैसे अपने शत्रु भी सब तुमने गले लगाये हैं।
घोर साँप बेबस हो देख क चूहें की सरदारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

न कोई पद्वी का लालच मान और अपमान है क्या।
सुख दुख दोनों सदा बराबर घर भी क्या श्मशान भी क्या।
खप्पर डमरू सिंहनाद त्रिशूल ही तेरे भूषण हैं।

उनको तुमने गले लगाया जो इस जग के दूषण हैं।
तुझको नाथ त्रिलोकी पूजें कह कर के त्रिपुरारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

अजर अमर हैं पार्वती-शिव और कैलाश पे रहते हैं।
आओ उनके जीवन का हम सुंदर किस्सा कहते हैं।
बैठे बैठे उमा ने एक दिन मन में निश्चय ठान लिया।
शिव जी की आज्ञा लेकर लक्ष्मी के घर प्रस्थान किया।
शंकर ने चाहा भी रोकना किन्तु मन में आया है।
प्रभु इच्छा बिन हिले न पत्ता ये उन ही की माया है।
मन ही है बेकार में जो संकल्प-विकल्प बनाता है।
जिधर चाहता है मन उधर ये प्राणी दौड़ के जाता है।
मन सब को भटकाये जग में क्या नर और क्या नारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

पार्वती चल पड़ी वहाँ से मन में हर्ष हुआ भारी।
लक्ष्मी के महलों में मेरा स्वागत होगा सुखकारी।
अकस्मात मिलते ही सूचना मुझे सामने पायेंगी।
अपने आसन से उठ मुझ को दौड़ के गले लगायेंगी।
हाथ पकड़ कर बर जोरी मुझे आसान पर बिठलायेंगी।
धूप दीप नैवद्य से फिर मेरा सम्मान बढ़ायेंगी।
पर जो सोचा पार्वती ने हुआ उससे बिल्कुल उलटा।
लक्ष्मी ने घर आयी उमा से पानी तक भी न पूछा।
उलटा अपना राजभवन उसको दिखलाती फिरती थी।
नौकर चाकर धन वैभव पर वो इठलाती फिरती थी।
अगर मिली भी रूखे मन से वो अभिमान की मारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

पार्वती से बोली वो जिसको त्रिपुरारी कहते हैं।
कहाँ है तेरा पतिदेव सब जिसे भिखारी कहते हैं।
चिता और त्रिशूल फ़ावड़ी फ़टी हुई मृगछाला है।
ऐसी ही जायदाद को ले के कहाँ पे डेरा डाला है?।
पार्वती ने सुना तो उसकी क्रोध ज्वाला भड़क उठी।
होंठ धधकते थे दोनों और बीच में जिह्वा भड़क उठी।
बोली उमा कि तुमने चाहे मेरा न सम्मान किया।
बिन ही कारण मेरे पति का तुमने है अपमान किया।
उन्हें भिखारी कहते हुए कुछ तुमको आती लाज नहीं।
सच ये है कि तेरे पति को भीख बिना कोई काज नहीं।
वही भिखारी बन के राजा शिवि के यहाँ गया होगा।
या फिर बामन बन के राजा बलि के यहाँ गया होगा।
जहाँ भी देखा उसने वहीं पर अपनी झोली टाँगी थी।
ऋषि दधिचि से हड्डियों तक की उसने भिक्षा माँगी थी।
शंकर को तो जग वाले कहते हैं भोले भंडारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

पार्वती ने लक्ष्मी को यूँ जली और कटी सुनाई थी।
फिर भी वो बोझिल मन से कैलाश लौट के आई थी।
अन्तर्यामी ने पूछा क्यों चेहरा ये उदास हुआ।
सब बतलाया कैसे लक्ष्मी के घर उपहास हुआ।
बोली आज से अन्न जल को बिल्कुल नहीं हाथ लगाऊँगी।
भूखी प्यासी रह कर के मैं अपने प्राण गवाऊँगी।
मेरा जीवन चाहते हैं फिर मेरा कहना भी कीजे।
जैसा मैं चाहती हूँ वैसा महल मुझे बनवा दीजै।
महल बनेगा गृह प्रवेश पर लक्ष्मी को बुलवाना है।
मेरी अंतिम इच्छा है उसको नीचा दिखलाना है।
उससे बदला लूँगी मैं देखेगी दुनिया सारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

शंकर बोले पार्वती से मन पर बोझ न लाओ तुम।
भूल जाओ सब कड़वी बातें और मन शांत बनाओ तुम।
मान और अपमान है क्या बस यूँ ही समझा जाता है।
दुखी वही होता है जो ऊँचे से नीचे आता है।
उसे सदा ही डर रहता है जो ऊँचा चढ़ जायेगा।
जो बैठा है धरती पर उसे नीचे कौन बिठायेगा।
इसीलिये हमने धरती पर आसन सदा बिछाया है।
मान और अपमान से हट कर आनंद खूब उठाया है।
मेरी मानो गुस्सा छोड़ो इस में है सुख भारी॥
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

पार्वती ने ज़िद न छोड़ी, रोना धोना शुरु किया।
शंकर ने विश्वकर्मा को तब भेज संदेशा बुला लिया।
विश्वकर्मा से शम्भु बोले तुम इसका कष्ट मिटा दीजै।
जैसे भवन उमा चाहती हैं वैसा इसे बनवा दीजै।
पार्वती तब खुश होकर विश्वकर्मा को समझाने लगीं।
जो कुछ मन में सोच रखा था सब उनको बतलाने लगीं।
बोली बीच समन्दर में एक नगर बसाना चाहती हूँ।
चार हो जिसके दरवाज़े वो किला बनाना चाहती हूँ।
गर्म और ठंडे ताल-तलैया सुंदर बाग-बगीचे हों।
साफ़-सुहानी सड़कें हों और पक्के गली गलीचे हों।
मेरे रंगमहल की तुम छत में भी सोना लगवा दो।
सोने के हों घर दरवाजे बीच में हीरे जड़वा दो।
झिलमिल फ़र्शों में हो रंगबिरंगी मीनाकारी॥
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

सोने की दीवार फ़र्श और आँगन भी हों सोने के।
मंच-पलंग के साथ साथ सब बरतन भी हों सोने के।
मतलब ये के आज तलक न बना किसी का घर होवे।
उसको जब लक्ष्मी देखे झुक गया उसी का सर होवे।
विश्वकर्मा ने अपने अस्त्र ब्रह्म लोक से मँगवाये।
भवन कला का सब सामान वो साथ साथ ही ले आये।
आदिकाल से विश्वकर्मा एक ऐसे भवन निर्माता थे।
चित्र मूर्ति भवन बाग, वो सभी कला के वो ज्ञाता थे।
आँखें मूँद के अपने मन में जो संकल्प उठाते थे।
आँखें खोल के देखते थे बस वहीं भवन बन जाते थे।
ऐसा ही एक चमत्कार विश्वकर्मा ने दिखलाया था।
बीच समन्दर उन्होंने एक अनूठा भवन बनवाया था।
ठाठ-बाठ और धर्मपान सब उसके थे मनुहारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

मन में पार्वती ने जो सोचा था उससे बढ़कर था।
मतलब ये की लक्ष्मी के महलों से लगता था सुंदर था।
उमा बोली अब चलिये प्रभु उसमें एक यज्ञ रचाना है।
सब देवों के साथ साथ लक्ष्मी को भी बुलवाना है।
दोनों आये नगर में आज उमा को हर्ष अपार हुआ।
स्वर्ण महल दिखलाकर बोली मेरा सपन साकार हुआ।
बोली इसका गृहप्रवेश भी करना है त्रिपुरारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

शंकर सोचें खेल प्रभु का नहीं समझ में आता है।
जो जितना खुश होता है उतने ही आँसू बहाता है।
फिर भी उन्होंने पार्वती का बिल्कुल दिल नहीं तोड़ा था।
जो कुछ वो कहती जातीं थीं हाँ में हाँ ही जोड़ा था।
दे स्तुति देवताओं को निमंत्रण भिजवाया था।

विशर्वा पंडित जी को पूजा के लिये बुलाया था।
विष्णु-लक्ष्मी ब्रह्म इंद्र सभी देवता आये थे।
बीच समन्दर स्वर्ण महल देख सभी हर्षाये थे।
हाथ पकड़ कर लक्ष्मी का तब पार्वती ले जाती हैं।
सोने की ईंटों से बना वो महल उसे दिखलाती हैं।
और कहती हैं देख रही हो चमत्कार त्रिपुरारी का।
भिक्षु तुमने कहा जिसे यह महल है उसी भिखारी का।
देखने आई है ये देखो देखो ये दुनिया सारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

रोशनदान खिड़की दरवाज़े, फ़र्श तलक है सोने का।
तेरा महल अब नहीं बराबर मेरे महल के कोने का।
शंकर बोले पार्वती मन में अज्ञान नहीं भरते।
समझबूझ वाले व्यक्ति झूठा अभिमान नहीं करते।
इतने में पूजा का मंडप सज-धज कर तैयार हुआ।
शंकर उमा ने हवन कियाऔर नभ में जयजय कार हुआ।
ऋषि विशर्वा विधि विधान से मंत्र पढ़ते जाते थे।
बारीकि से पूजन की वे क्रिया समझाते थे।
पूर्ण आहुति पड़ी तो सब देवों ने फूल बरसाये थे।
साधु देवता ब्राह्मण सब भोजन के लिये बिठाये थे।
फिर सब को दे दे के दक्षिणा सब का ही सम्मान किया।
खुशी खुशी सब देवताओं ने माँगी विदा प्रस्थान किया।
जय जय से नभ गूँज उठा सब हर्षित थे नर नारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

अंत में शिवजी ने आचार्य को अपने पास बुलाया था।
ऋषि विशर्वा ने आकर तब चरणों में शीश झुकाया था।
शंकर बोले आप के आने से हम सचमुच धन्य हुए।
माँगो जो भी माँगना चाहो हम हैं बहुत प्रसन्न हुए।

पंडित बोला क्या सचमुच ही मेरी झोली भर देंगे।
अभी अभी जो कहा आपने वचन वो पूरा कर देंगे।
शंकर बोले हाँ हाँ तेरे मन में कोई शंका है।
मेरा वचन सत्य होता है ये तीन लोक में डंका है।
तूने हमें प्रसन्न किया और अब है तेरी बारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

शीश नवा कर बोला वो प्रभु अपना वचन सत्य कर दीजै।
हे भोले भंडारी मैं माँगूँगा वो वर दीजै।
सिद्ध बीच ये सोने का जो आपने भवन बनाया है।
यही मुझे दे दीजिये मेरा मन इस ही पे आया है।
जिसने भी ये शब्द सुने तो सुन के बड़ा आघात हुआ।
उमा के मन पर तो सचमुच जैसे था वज्रपात हुआ।
बोली उमा ऐ ब्राह्मण तुमने सोई कला जगाई है।
मेरी अरमानों की बस्ती में एक आग लगाई है।
मेरा है ये श्राप कि आखिर इक दिन वो भी आयेगा।
हरी भरी तेरी दुनिया का नाम तलक मिट जायेगा।
ऐसे काल के चक्कर में ये बस्ती भी खो जायेगी।
उस दिन तेरी सोने की नगरी भी राख हो जायेगी।
तेरा दीया बुझेगा एक दिन होगी रात अंधियारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

सुना आपने जग वालों भयंकर उमा का श्राप था जो।
पंडित और नहीं था कोई रावण का ही बाप था वो।
बीच समन्दर बसी हुई वो सोने ही की लंका थी।
जो कुछ कहा उमा ने वो सच होने में क्या शंका थी।
पार्वती के शाप ने फिर एक दिन वो रंग दिखलाया था।
पवनपुत्र ने एक दिन सोने की लंका को राख बनाया था।
राम और रावण के बीच भड़क उठी थी रण ज्वाला।

रहा न उसके कुल में कोई पानी तक देने वाला।
"सोमनाथ" जो औरों को जितना भी दुख पहुँचाता है।
ऐसे ही दुख सागर में वो डूब एक दिन जाता है।
शंकरपार्वती की जय जय सब बोलें नर नारी।
डमरू वाले बाबा तेरी लीला है न्यारी। जय जय भोले भंडारी।

रावण और मंदोदरी के तीन पुत्र हुए - अक्षय कुमार, मेघनाद और अतिकाय। रावण बहुत अहंकारी था। मंदोदरी जानती थी कि जिस मार्ग पर वह चल रहा है, उस मार्ग पर विनाश के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नहीं होगा। उसने बहुत प्रयास किये ताकि रावण सही मार्ग पर चल पड़े, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ।

जब रावण ने प्रतिबिंबित माँ सीता का हरण किया तो महारानी मंदोदरी चाहती थी कि रावण, भगवान राम की पत्नी माता सीता को उनके पति के पास भेज दे। क्योंकि वह उस श्राप के विषय में जानती थी जिसके अनुसार भगवान राम के हाथ से ही रावण का अंत होना था। उन्होंने रावण को बहुत समझाने का प्रयास किया।

गोस्वामी जी ने श्री रामचरितमानस में इस का बहुत अच्छी तरह से चित्रण किया है।

जब भगवान् राम की सेना समुद्र बाँध कर लंका पहुँच गयी तो महारानी मंदोदरी ने रावण को बहुत समझाया।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥

"वहाँ (लंका में) जब से हनुमान्‌जी लंका को जलाकर गए, तब से राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षस कुल की रक्षा (का कोई उपाय) नहीं है।"

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥

"जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है (हम लोगों की बड़ी बुरी दशा होगी)? दूतियों से नगरवासियों के वचन सुनकर मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गई।"

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

"वह एकांत में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरस में पगी हुई वाणी बोली- हे प्रियतम! श्री हरि से विरोध छोड़ दीजिए। मेरे कहने को अत्यंत ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीजिए।"

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

"जिनके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी! यदि भला चाहते हैं, तो अपने मंत्री को बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिए।"

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

"सीता आपके कुल रूपी कमलों के वन को दुःख देने वाली जाड़े की रात्रि के समान आई है। हे नाथ! सुनिए, सीता को दिए (लौटाए) बिना शम्भु और ब्रह्मा के किए भी आपका भला नहीं हो सकता।"

राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥

"श्री रामजी के बाण सर्पों के समूह के समान हैं और राक्षसों के समूह मेंढक के समान। जब तक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तब तक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिए।"

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥

"मूर्ख और जगत प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानों से उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा (और बोला) स्त्रियों का स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मंगल में भी भय करती हो। तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है।"

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

"यदि वानरों की सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डर से काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसी की बात है।"

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥

"रावण ने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभा में चला गया। मंदोदरी हृदय में चिंता करने लगी कि पति पर विधाता प्रतिकूल हो गए।"

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥

"ज्यों ही वह सभा में जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पाई कि शत्रु की सारी सेना समुद्र के उस पार आ गई है, उसने मंत्रियों से पूछा कि उचित सलाह कहिए (अब क्या करना चाहिए?)। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किए रहिए (इसमें सलाह की कौन सी बात है?)।"

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥

"आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हैं?"

जब रावण युद्ध के लिए तैयार हुए तथा रणभूमि में अपनी सेना भेजने को तत्पर हुए, फिर महारानी मंदोदरी ने रावण को समझाने का प्रयास किया।

गोस्वामी जी ने श्री रामचरितमानस के लंका (युद्ध) काण्ड में इस का भी बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥

"(जब) मंदोदरी ने सुना कि प्रभु श्री रामजी आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है।"

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥

"(तब) वह हाथ पकड़कर पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणों में सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा- हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिए।"

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥

"हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सकें। आप में और श्री रघुनाथजी में निश्चय ही कैसा अंतर है - जैसा जुगनू और सूर्य में!"

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥

"जिन्होंने (विष्णु रूप से) अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ (दैत्य) मारे और (वराह और नृसिंह रूप से) महान् शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया, जिन्होंने (वामन रूप से) बाली को बाँधा और (परशुराम रूप से) सहस्रबाहु को मारा, वे ही (भगवान्) पृथ्वी का भार हरण करने के लिए (रामरूप में) अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं!"

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥

"हे नाथ! उनका विरोध न कीजिए, जिनके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं।"

रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥

"(श्री रामजी) के चरण कमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकीजी सौंप दीजिए और आप पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए।"

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न खाई॥
चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥

"हे नाथ! श्री रघुनाथजी तो दीनों पर दया करने वाले हैं। सम्मुख (शरण) जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता। आपको जो कुछ करना चाहिए था, वह सब आप कर चुके। आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभी को जीत लिया।"

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥

"हे दशमुख! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढ़ापे) में राजा को वन में चला जाना चाहिए। हे स्वामी! वहाँ (वन में) आप उनका भजन कीजिए जो सृष्टि के रचने वाले, पालने वाले और संहार करने वाले हैं।"

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥

"हे नाथ! आप विषयों की सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागत पर प्रेम करने वाले भगवान् का भजन कीजिए। जिनके लिए श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं।"

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥

"वही कोसलाधीश श्री रघुनाथजी आप पर दया करने आए हैं। हे प्रियतम! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यंत पवित्र और सुंदर यश तीनों लोकों में फैल जाएगा।"

अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥

"ऐसा कहकर, नेत्रों में (करुणा का) जल भरकर और पति के चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीर से मंदोदरी ने कहा- हे नाथ! श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाए।"

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥

"तब रावण ने मंदोदरी को उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा- हे प्रिये! सुन, तूने व्यर्थ ही भय मान रखा है। बता तो जगत् में मेरे समान योद्धा है कौन?"

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥

"वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों को तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत रखा है। देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं। फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया?"

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभाँ बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरीं हृदयँ अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥

"मंदोदरी ने उसे बहुत तरह से समझाकर कहा (किन्तु रावण ने उसकी एक भी बात न सुनी) और वह फिर सभा में जाकर बैठ गया। मंदोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया कि काल के वश होने से पति को अभिमान हो गया है।"

सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥

"सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा? मंत्री कहने लगे- हे राक्षसों के नाथ! हे प्रभु! सुनिए, आप बार-बार क्या पूछते हैं?"

कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥

"कहिए तो (ऐसा) कौन-सा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाए? (भय की बात ही क्या है?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे भोजन (की सामग्री) हैं।"

रावण के अभिमान ने अपनी सबसे बड़ी हितैषी अपनी धर्मपत्नी मंदोदरी की बात नहीं मानी। लेकिन हितैषी वहीं नहीं रुक जाता। वह बार बार चेतावनी देता है और बार बार प्रयास करता रहता है कि संभवतः अभी भी मेरी बात मानकर अपना कल्याण कर लें।

मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥

"जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरा, तब से मंदोदरी के हृदय में सोच बस गया॥"

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ लग धरहू॥

"नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी- हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिए। हे प्रियतम! श्री राम से विरोध छोड़ दीजिए। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए।"

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥

"मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिए कि ये रघुकुल के शिरोमणि श्री रामचंद्रजी विश्व रूप हैं। (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है)। वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं।"

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥

"पाताल (जिन विश्व रूप भगवान् का) चरण है, ब्रह्म लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौंहों का चलना) है। सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल है।"

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥

"अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं। रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं। वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है।"

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥

"लोभ जिनका अधर (होठ) है। यमराज भयानक दाँत हैं। माया हँसी है। दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है।वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है।"

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥

"अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं। पर्वत अस्थियाँ हैं। नदियाँ नसों का जाल है। समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाए?"

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥

"शिव जिनका अहंकार हैं। ब्रह्मा बुद्धि हैं। चंद्रमा मन हैं और महान (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचर रूप भगवान श्री रामजी ने मनुष्य रूप में निवास किया है।"

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥

"हे प्राणपति सुनिए, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्री रघुवीर के चरणों में प्रेम कीजिए, जिससे मेरा सुहाग न जाए।"

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥

"पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा (और बोला) अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है। स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं।"

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥

"साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन) अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया।"

सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा अब प्रसाद तोरें॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥

"हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभाव से ही मेरे वश में है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुता का बखान कर रही है।"

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयउ॥

"हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यभरी) हैं, समझने पर सुख देने वाली और सुनने से भय छुड़ाने वाली हैं। मंदोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को कालवश मतिभ्रम हो गया है।"

ऐहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥

"इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत से विनोद करते हुए रावण को सबेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर और घमंड में अंधा लंकापति सभा में गया।"

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥

"यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं तो भी बेल फूलता फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्ख के हृदय में चेत (ज्ञान) नहीं होता।"

संत का स्वभाव तो देखिये। कितना भी अपमानित होता रहे फिर भी अपने निज जन को सदमार्ग पर लाने का प्रयास ही करता रहता है। ऐसी ही संत थीं मंदोदरी जी। जब श्री राम दूत अंगद के समझाने पर भी रावण नहीं माना, और सीता माँ को वापस देने को तैयार नहीं हुआ, तब फिर एक बार महारानी मंदोदरी ने उसे समझाने का प्रयास किया। गोस्वामी जी कहते हैं।

साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरीं रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ॥

"सन्ध्या हो गई जानकर दशग्रीव बिलखता हुआ (उदास होकर) महल में गया। मन्दोदरी ने रावण को समझाकर फिर कहा।"

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥

"हे कान्त! मन में समझकर (विचारकर) कुबुद्धि को छोड़ दो। आप से और श्री रघुनाथजी से युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाई ने एक जरा सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है।"

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥

"हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राम में जीत पाएँगे, जिनके दूत का ऐसा काम है? खेल से ही समुद्र लाँघकर वह वानरों में सिंह (हनुमान्) आपकी लंका में निर्भय चला आया!:

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥

"रखवालों को मारकर उसने अशोक वन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमार को मार डाला और संपूर्ण नगर को जलाकर राख कर दिया। उस समय आपके बल का गर्व कहाँ चला गया था?"

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥

"अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिए (डींग न हाँकिए)। मेरे कहने पर हृदय में कुछ विचार कीजिए। हे पति! आप श्री रघुपति को (निरा) राजा मत समझिए, बल्कि अग-जगनाथ (चराचर के स्वामी) और अतुलनीय बलवान् जानिए।"

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥

"श्री रामजी के बाण का प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था, परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनक की सभा में अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बल वाले आप भी थे।"

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥

"वहाँ शिवजी का धनुष तोड़कर श्री रामजी ने जानकी को ब्याहा, तब आपने उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? इंद्रपुत्र जयन्त उनके बल को कुछ-कुछ जानता है। श्री रामजी ने पकड़कर केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया।"

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥

"शूर्पणखा की दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदय में (उनसे लड़ने की बात सोचते) विशेष (कुछ भी) लज्जा नहीं आती!"

बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मार्‌यो तेहि जानहु दसकंध॥

"जिन्होंने विराध और खर-दूषण को मारकर लीला से ही कबन्ध को भी मार डाला और जिन्होंने बालि को एक ही बाण से मार दिया, हे दशकन्ध! आप उन्हें (उनके महत्व को) समझिए!"

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥

"जिन्होंने खेल से ही समुद्र को बँधा लिया और जो प्रभु सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर पड़े, उन सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ाने वाले) करुणामय भगवान् ने आप ही के हित के लिए दूत भेजा।"

सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥

"जिसने बीच सभा में आकर आपके बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड में आकर सिंह (उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है) रण में बाँके अत्यंत विकट वीर अंगद और हनुमान् जिनके सेवक हैं,

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥

हे पति! उन्हें आप बार बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का बोझ ढो रहे हैं! हा प्रियतम! आपने श्री रामजी से विरोध कर लिया और काल के विशेष वश होने से आपके मन में अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता।"

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साई। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाई॥

"काल दण्ड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण समय) निकट आ जाता है, उसे आप ही की तरह भ्रम हो जाता है।"

दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥

"आपके दो पुत्र मारे गए और नगर जल गया। (जो हुआ सो हुआ) हे प्रियतम! अब भी (इस भूल की) पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिए (श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए) और हे नाथ! कृपा के समुद्र श्री रघुनाथजी को भजकर निर्मल यश लीजिए।"

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभाँ गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥

"स्त्री के बाण के समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभा में चला गया और सारा भय भुलाकर अत्यंत अभिमान में फूलकर सिंहासन पर जा बैठा।"

अभिमानी रावण ने फिर भी महारानी मंदोदरी की बात नहीं मानी। निष्कर्ष - अपने कुल सहित रण में मारा गया। अब मंदोदरी का महान चरित्र तो देखिये। जब राम-रावण युद्ध हुआ, तब एक अच्छी पत्नी की तरह उन्होंने अपने पति का साथ दिया और समर्पित स्त्री की पहचान कराते हुए रावण के जीवित लौट आने की कामना के साथ उसे रणभूमि के लिए विदा किया।

युद्ध के पश्चात मंदोदरी भी युद्ध भूमि पर गई और वहां अपने पति, पुत्रों और अन्य संबंधियों का विनाश देखकर अत्यंत दुखी हुई। फिर उन्होंने भगवान राम की तरफ देखा जो स्वयं अलौकिक आभा से युक्त थे। भगवान राम ने लंका के सुखद भविष्य हेतु विभीषण को राजपाट सौंप दिया। अद्भुत रामायण के अनुसार भगवान राम ने मंदोदरी को यह सुझाव दिया कि वह विभीषण से विवाह कर लें, साथ ही उन्होंने मंदोदरी को यह भी याद दिलाया कि वह अभी लंका की महारानी हैं।

ऐसा पौराणिक कथाओं में उल्लेख है कि जब भगवान राम अपनी पत्नी सीता और भ्राता लक्ष्मण के साथ वापस अयोध्या लौटे तब पीछे से मंदोदरी ने खुद को महल में कैद कर लिया और बाहर की दुनिया से अपना संपर्क

समाप्त कर लिया। कुछ समय बाद वह पुन: अपने महल से निकली और विभीषण से विवाह करने के लिए तैयार हो गई। विवाह के पश्चात उन्होंने लंका के साम्राज्य को सही दिशा की ओर बढ़ाना प्रारंभ कर दिया।

इस महान व्यक्तित्व के कारण ही महाऋषी वेद व्यास जी ने महारानी मंदोदरी को तृतीय पंचकन्या के रूप में पूजिनीय माना है।

अध्याय ४ - चतुर्थ पंचकन्या कुंती

महारानी कुंती महाभारत की एक मुख्य पात्रा हैं जिन्हे महाऋषी वेद व्यास जी ने पंचकन्याओं में चतुर्थ कन्या के रूप में उन्हें पूजिनीय और प्रातः स्मरणीय बताया है। भीषण व्यथा में भी सदैव सत्य-मार्ग-गामिनी माँ कुंती एक अद्भुत मार्ग दर्शनीय व्यक्तित्व हैं।

कुंती, यादव सम्राट शूरसेन की पुत्री थीं। सम्राट शूरसेन के पुत्र सम्राट वासुदेव, भगवान् कृष्ण के पिता, इनके सहोदर भाई थे। इस रिश्ते से कुंती भगवान् कृष्ण की बुआ थीं। शूरसेन जी ने इनका नाम प्रथा रक्खा था। सम्राट शूरसेन के फुफेरे भाई सम्राट कुंतिभोज के कोई सन्तान नही थी। सम्राट शूरसेन ने अपने फुफेरे भाई कुंतिभोज को यह वचन दिया कि उनकी पहली सन्तान को वह उन्हें गोद दे देंगे। फलस्वरूप पृथा को सम्राट शूरसेन जी ने सम्राट कुन्तिभोज जी को गोद दे दिया जिससे उनका नाम बाद में कुंती पड़ गया।

कुंती के बाल्यावस्था के समय में महाऋर्षि दुर्वासा जी सम्राट कुंतिभोज के यहां अतिथि होकर आये। सम्राट ने राजकुमारी कुंती को विशेष रूप से उनकी सेवा में लगाया। कुंती ने एक वर्ष तक बड़ी सावधानी और सहनशीलता के साथ महाऋषी की सेवा की। महाऋषी ने अपनी दिव्यदृष्टी से जान लिया कि कुंती में माँ बनने की क्षमता नहीं है। कुंती की सेवा से प्रसन्न होकर महाऋषि दुर्वासा ने उन्हें एक दिव्य मंत्र दिया जिससे वह किसी भी देवता का अगर ध्यान करें तो वह प्रकट होकर उन्हें अपने समान ही तेजस्वी पुत्र प्रदान करेंगे।

उत्सुकतावश, महाऋषी दुर्वासा जी के चले जाने के बाद उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि जो मंत्र महाऋषी ने दिया है उसमें कोई सार्थकता है अथवा नहीं। उन्होंने सूर्योदय पर आकाश में भगवान सूर्य को देखा और मंत्र पढ़कर सूर्यदेव का स्मरण किया। भगवान सूर्य कुंती के सामने प्रगट हो गए। सूर्यदेव के सुंदर एवं तेजवान रूप को देखकर कुंती आकर्षित हो गई। सूर्यदेव ने कहा, कुंती में तुम्हें पुत्र देने आया हूं। कुंती घबरा गई। उन्होंने कहा कि मैं अभी कुंआरी हूं, ऐसे में मैं पुत्रवती नहीं होना चाहती। सूर्यदेव ने कहा कि मंत्र की महिमा को टालने का मुझ मैं सामर्थ्य नहीं अतः वरदान स्वरूप तुम्हें पुत्र अवश्य प्राप्त होगा जो मेरे ही स्वरुप होगा। अब चूँकि तुम कुंआरी हो, इसके साथ ही मैं तुम्हें वर देता हूं कि तुम्हे पुत्र प्राप्त होने के बाद भी किसी भी तरह का कलंक नहीं लगेगा और तुम्हारा कुँवारित्व मुझसे पुत्र पाने के बाद भी नष्ट नहीं होगा। इस तरह कुंती ने एक सुंदर बालक को जन्म दिया। वह बालक जन्म के समय से ही तेजस्वी और सुंदर था। पुत्र होने के बाद लोकनिंदा के डर से कुंती ने उस पुत्र को एक संदूक में रखकर गंगा नदी में बहा दिया। वह संदूक तैरता हुआ अधिरथ नाम के एक सारथी की दृष्टी में पड़ा। सारथी की कोई संतान नहीं थी, उन्होंने जब संदूक खोला तो उन्हें पुत्र मिल गया। सारथी उस पुत्र को अपने घर ले गया। इसी पुत्र ने महाभारत के एक मुख्य चरित्र कर्ण की भूमिका निभाई।

कुंती के विवाह योग्य हो जाने पर सम्राट कुंतीभोज ने एक स्वयंवर आयोजित किया जिसमें उस समय के सभी दिग्गज राजाओं ने भाग लिया। कुंती ने इस स्वयंवर में भरतश्रेष्ठ हस्तिनापुर सम्राट पाण्डु को वरमाला पहना दी और उनसे विवाह कर हस्तिनापुर आ गयीं।

कुंती-पाण्डु विवाह उपरान्त महाज्ञानी पितामह भीष्म कुंती से प्रथम साक्षात्कार में ही उसके माँ बनने की असमर्थता की बात समझ गए। अतः हस्तिनापुर वंस को आगे बढ़ाने के लिए उनके मष्तिष्क में पाण्डु के दूसरे विवाह के विचार आने लगे।

प्राचीन काल में रावी तथा व्यास नदी के बीच के दोआब का भाग 'मद्र' कहलाता था, जो आजकल पंजाब प्रान्त में स्थित है। उन दिनों शाकल मद्र देश की राजधानी थी। इस देश की राजकन्या का नाम माद्री था। राजकुमारी माद्री परम रुपवती थी। इनकी सुन्दरता की प्रशंसा सुन कर पितामह भीष्म ने सम्राट शल्य के यहॉ जा कर इन्हें सम्राट पाण्डु के लिए मॉगा। सम्राट शल्य के यहॉ यह नियम था कि वरपक्ष से अत्यधिक धनसम्पति लेकर लडकी दी जाती थी अतएव पितामह भीष्म को उनकी प्रथा के अनुसार कन्या के शुल्क के रुप में बहुत सा धन देना पडा था। तब उस देश की रीतिरिवाज के अनुसार सम्राट शल्य ने भी आभूषणों आदि से अलंकृत कर राजकुमारी माद्री को पितामह भीष्म के हाथों सौंप दिया। बाद में पितामह भीष्म ने हस्तिनापुर में आ कर शुभ दिन तथा शुभ मुहूर्त में सम्राट पाण्डु से इनका विवाह किया।

राजकुमारी माद्री से सम्राट पाण्डु का विवाह महारानी कुंती के लिए एक गहरे सदमे के रूप में आया। लेकिन महारानी कुंती का व्यक्तित्व - उन्होंने राजकुमारी माद्री को अपनी बहन की तरह स्वीकार किया।

अपने वैवाहिक जीवन के कुछ प्रारम्भिक आनंदमय क्षण माद्री के साथ महारानी कुंती हस्तिनापुर में बिता रहीं थीं तभी एक दिन सम्राट पाण्डु का हृदय वन आखेट करने को हुआ। महारानी कुंती एवं माद्री के साथ सम्राट पाण्डु वन में आखेट के लिए गए। सम्राट पाण्डु आखेट को निकले। वहां उन्हें हिरनों का एक जोड़ा दिखाई दिया। सम्राट पाण्डु ने निशाना साधकर उन पर पांच बाण मारे जिससे हिरन घायल हो गए। वास्तव में वह हिरन ऋषि किंदम नामक एक ऋषि थे जो अपनी पत्नी के साथ विहार कर रहे थे। तब किंदम ऋषि ने अपने वास्तविक स्वरूप में आकर सम्राट पाण्डु को श्राप दिया कि तुमने अकारण मुझ पर और मेरी तपस्विनी पत्नी पर बाण चलाए हैं जब हम विहार कर रहे थे। अब तुम जब भी अपनी पत्नी के साथ सहवास करोगे तो उसी समय तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी तथा वह पत्नी तुम्हारे साथ सती हो जाएगी। इतना कहकर किंदम ऋषि ने अपनी पत्नी के साथ प्राण त्याग दिए। ऋषि की मृत्यु होने पर सम्राट पाण्डु को बहुत दुःख हुआ। ऋषि की मृत्यु का प्रायश्चित करने के उद्देश्य से सम्राट पाण्डु ने सन्यास लेने का विचार किया। जब महारानी कुंती व माद्री को यह पता चला तो उन्होंने सम्राट पाण्डु को समझाया कि वानप्रस्थाश्रम में रहते हुए भी आप प्रायश्चित कर सकते हैं। सम्राट पाण्डु को यह सुझाव ठीक लगा और उन्होंने वन में रहते हुए ही तपस्या करने का निश्चय किया। सम्राट पाण्डु ने ब्राह्मणों के माध्यम से यह संदेश हस्तिनापुर भी भेजा। यह सुनकर हस्तिनापुरवासियों को बड़ा दुःख हुआ। तब पितामह भीष्म ने धृतराष्ट्र को राजा बना दिया। उधर सम्राट पाण्डु अपनी पत्नियों के साथ गंधमादन पर्वत पर जाकर ऋषिमुनियों के साथ साधना करने लगे।

सम्राट पाण्डु इस समय तक निःसंतान थे। ऋषी कदम्ब के श्राप के कारण वह पुत्र प्राप्ति में असमर्थ थे। पुत्र प्राप्ति की उनकी तीव्र इक्षा ने उन्हें महारानी कुंती एवं माद्री के समक्ष नियोग से पुत्र प्राप्त करने की संभावनाओं पर विचार करने को विवश किया।

नियोग से पुत्र पाने की पांडु की बातें सुन कर महारानी कुंती ने विवाह से पहले दुर्वासा मुनि से प्राप्त मंत्र की चर्चा की। "अपने पिता के घर में उनके अतिथियों का सत्कार मेरा दायित्व होता था। व्रती और तपस्वी ब्राह्मणों की सेवा मैं स्वयं करती थी। एक बार मेरी सेवा सत्कार से संतुष्ट हो दुर्वासा मुनि ने किसी भी देवता का सफल आह्वान करने के लिए एक मंत्र मुझे दिया था। मुनि ने मंत्र देते कहा था - इस मंत्र को पढ़ते हुए जिस देव का भी तुम स्मरण करोगी वह तुम्हारे पास चला आएगा, चाहे आने की उस की इच्छा हो या नहीं हो और तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा। उस देव की कृपा से तुम्हे पुत्र भी प्राप्त होगा।"

"उस तपस्वी ब्राह्मण के वचन असत्य नहीं हो सकते। मैं उस मंत्र से किसी देवता को बुला सकती हूँ। आप आज्ञा दें राजन, मैं किस देव का आह्वान करूँ। आप जो चाहेंगे वही मैं करूँगी"।

यह सुन पांडु ने बहुत प्रसन्न हो कर कहा "इस काम के लिए मुझे धर्मराज सब से उपयुक्त देव लग रहे हैं। सभी देवताओं में वे सब से अधिक धर्म परायण हैं। उन से जो पुत्र मिलेगा वह सभी कुरुओं में सब से अधिक धार्मिक होगा। धर्म और नैतिकता के देवता से उत्पन्न हमारे उस पुत्र का हृदय सदैव पवित्र रहेगा। इस शुभ काम में महारानी कुंती विलंब नहीं करो। आज ही देवी पुत्र प्राप्ति की मेरी इच्छा को तुम पूरी कर दो"।

पांडु का मन जान कर महारानी कुंती ने धर्मराज का नमन किया और उनकी प्रदक्षिणा कर उनकी आज्ञा के पालन में लग गयी। जब गांधारी को गर्भ धारण किए एक वर्ष हो चुका था तब कुंती ने पुत्र प्राप्ति के लिए धर्मराज का आह्वान किया था। धर्मराज का नमन कर कुंती ने दुर्वासा के दिए मंत्र को पढ़ना प्रारंभ किया। मंत्र की शक्ति से धर्मराज अपने स्वर्ण रथ में कुंती के पास खिंचे चले आया, और मुस्कुराते हुए उन्होंने ने पूछा "कुंती, बोलो तुम क्या चाहती हो?" कुंती ने भी मुस्कुराते हुए कहा "संतान"।

धर्मराज और कुंती के उस मिलन से कार्तिक शुक्ल पंचमी के दिन अभिजीत मुहूर्त (आठवें मुहूर्त) में पांडु के प्रथम पुत्र का जन्म हुआ। जन्म काल में ज्येष्ठ और चंद्रमा लग्न में थे। उस शिशु के जन्म लेते ही गंभीर आकाशवाणी हुई थी "यह बालक अद्वितीय धार्मिक होगा। अपनी अप्रतिम सत्य निष्ठा से यह पृथ्वी पर राज करेगा और तीनो लोकों में पांडु का यह पहला पुत्र युधिष्ठिर के नाम से जाना जाएगा"।

धार्मिक पुत्र प्राप्त कर लेने के बाद पांडु ने कुंती से एक बलवान पुत्र लाने को कहा क्योंकि विद्वानों के अनुसार क्षत्रिय का सबल होना आवश्यक है। यह सुन कुंती ने वायु का आह्वान किया। मंत्र के प्रभाव से अपने मृग पर आसीन शक्तिशाली पवन देव ने उस के पास पहुँच कर पूछा "बोलो कुंती तुम्हे क्या चाहिए?"

सलज्ज स्वर में कुंती ने उस से एक अप्रतिम बलवान पुत्र की माँग की जो किसी के दर्प चूर कर सके और पवन देव ने कुंती से भीम को उत्पन्न किया। भीम के जन्म के तुरंत बाद कुंती की कुटिया में एक बाघ घुस आया था। बाघ देख कुंती घबड़ा कर उठ खड़ी हुई थी जिस से उस की गोद से नवजात भीम नीचे गिर पड़ा था। कुटिया पर्वत पर बनी थी किंतु पत्थरों पर गिरने से भीम को तो कुछ नहीं हुआ बस वह पत्थर चूर्ण हो गया था। इसी दिन हस्तिनापुर में दुर्योधन का भी जन्म हुआ था।

वृकोदर (भीम) के जन्म के बाद पांडु ऐसा पुत्र चाहने लगा जिस की शक्ति और जिस के चरित्र की ख्याति तीनो लोकों में फैले। संसार में सब कुछ प्रारब्ध और पुरुषार्थ के मिलने से ही हो पाता है। पुत्र के प्रारब्ध को बल करने के लिए उस ने देवेन्द्र से पुत्र पाने की सोची। "देवेन्द्र को अतुल शक्ति है। उस की तपस्या कर मैं उस से एक अतुल शक्ति वाला पुत्र पा सकूँगा। उस का दिया पुत्र सभी मानवों और मानवेतर प्राणियों को पराजित कर सकेगा"। यह सब सोच उस ने कुंती को एक वर्ष तक मांगलिक व्रत रखने

के लिए कहा और स्वयम् उन्होंने पूरे वर्ष एक पैर पर खड़े हो कर कठोर तप से इंद्र को प्रसन्न करने की सोची।

बहुत दिनों की तपस्या के बाद इंद्र ने प्रकट हो उसे ऐसे पुत्र देने के वचन दिए जिसे तीनो लोकों में जाना जाएगा, जो ब्राह्मणों, गौओं और सत्य-निष्ठ व्यक्तियों के हितों की रक्षा करते हुए सभी शत्रुओं का नाश कर सकेगा। इंद्र के वचन सुन पांडु ने कुंती से कहा "तुम्हारा व्रत सफल हुआ। देवेन्द्र प्रसन्न हैं और जैसा तुम चाहती हो वैसा पुत्र तुम्हे मिलेगा - महात्मा, सूर्य के समान तेजस्वी, पराक्रमी, युद्ध में अपराजेय और सुदर्शन। अब तुम देवेन्द्र का आह्वान करो और क्षात्र गुणों से भरे उस बालक को ले आओ"।

कुंती ने तब इंद्र का आह्वान किया और इंद्र से अर्जुन का जन्म हुआ। उस के जन्म के समय मेघ गर्जन के समान आकाशवाणी हुई थी जिसे पांडु और उस पर्वत पर रहने वाले सभी तपस्वियों ने सुना था। "तुम्हारा यह पुत्र, कुंती, कार्तवीर्य और शिबि के समान पराक्रमी और इंद्र के समान अदम्य होगा। यह तुम्हे उतना ही आनंद देगा जितना कभी विष्णु ने (अपनी माता) अदिति को दिया था। मद्र, कुरू, केकेय, चेदि, काशी, करुष आदि सभी राष्ट्रों को अपने अधीन कर यह कुरू वंश की विजय पताका पूरे विश्व में लहराएगा। खांडव वन के प्राणियों की वसा से यह अग्नि को संतुष्ट करेगा। अपने भाइयों के साथ यह तीन महान यज्ञ करेगा। शक्ति में यह जमदाग्निपुत्र या विष्णु के भी समतुल्य होगा और अपने पराक्रम से यह देवाधिदेव शंकर को भी प्रसन्न कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त करेगा। इंद्र की आज्ञा से यह महाबाहु देवताओं के शत्रु निवटकवच दैत्यों का नाश करेगा। सभी दिव्य शस्त्रास्त्र प्राप्त कर यह अपने वंश की भाग्य लक्ष्मी को पुनर्जागृत कर पाएगा।"

अदृश्य नाद वाद्यों की ध्वनि से पूरा पर्वत क्षेत्र गूंजने लगा। आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी और इंद्र समेत सभी देव आकाश में उस बालक को

देखने एकत्रित हो गये। उसे सम्मानित करने कद्रू के पुत्र, विनता का पुत्र, भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदाग्नि, वसिष्ठ और अत्रि भी वहाँ आकाश में प्रकट हुए। साथ में मरीचि, अंगिरस, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु, दक्ष प्रजापति भी। तुंबरू और गंधर्व गायन करने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगीं । व्योम में बारहो आदित्य, ग्यारहो रुद्र, अठो वसु, दोनो अश्विनिकुमार, मरुतगण, विश्वदेव और साध्य प्रकट हुए। सभी दिव्य प्राणी अदृश्य रूप में आए थे किंतु पर्वत पर रहने वाले महान तपस्वी उन्हे देख पा रहे थे। यह अद्भुत दृश्य देख कर उन तपस्वियों के हृदय में पांडु के पुत्रों के लिए और अधिक प्रेम उमड़ने लगा।

अर्जुन के जन्म के कुछ समय बाद पांडु ने कुंती से और पुत्र लाने का अनुरोध किया। किंतु कुंती इस के लिए तैयार नहीं थी "ज्ञानियों ने विपत्ति में भी चार प्रसव की अनुशंसा नहीं की है"।

कुंती के तीन और गांधारी के सौ पुत्रों के जन्म लेने के बाद एक दिन माद्री ने एकांत में पांडु से कहा "आर्यपुत्र मैं अभी भी निस्संतान हूँ। यदि पृथा मुझे भी माँ बनने का एक अवसर दे देती तो मैं बहुत अनुगृहीत होंगी। यदि तुम राजन, मेरा कल्याण-मंगल चाहते हो तो कुंती से कह कर मेरी इच्छा पूरी करा दो।"

"मैं भी इस पर सोचता रहा हूँ पर तुम इसे किस तरह लोगी यह नहीं जानने के चलते मैं ने इस की चर्चा कभी नहीं की"। पांडु ने कहा "अब मैं तुम्हारी इच्छा जान गया हूँ और प्रयास करूंगा। मुझे विश्वास है कुंती मेरे अनुरोध को नहीं ठुकराएगी।"

उसके कुछ दिनों के बाद पांडु ने एकांत में कुंती से अपने वंश के विस्तार के लिए कुछ और पुत्र माँगे। "कुछ ऐसा करो देवी", उस ने कहा "कि तुम्हे, मुझे, और हमारे पूर्वजों को सदैव पिन्ड मिलते रहें। जैसे अनंत ख्याति पाने के बाद भी इंद्र और अधिक ख्याति के लिए यज्ञ करते रहता है; या जैसे

सभी वेद वेदांगों को पढ़ लेने के बाद भी ब्राह्मण और अधिक ख्याति के लिए अपने गुरुओं के पास अध्ययन करते रहते हैं, वैसे ही माद्री को निस्संतान रहने से बचा कर तुम भी चिरजीवि ख्याति प्राप्त करो।"

पांडु के वचन सुन कर कुंती तुरंत मान गयी और माद्री से उस ने कहा "किसी देव का तुम अभी स्मरण करो और तुम उस से उसी के समान पुत्र प्राप्त करोगी"। कुछ क्षण विचार कर माद्री ने अश्विनिकुमारों का स्मरण किया और उन दोनों से उसे उन्ही के समान तेजस्वी और सुदर्शन पुत्र - नकुल और सहदेव, प्राप्त हुए।

इस तरह पांडु को देवताओं के दिए पाँच पुत्र हुए। सभी मांगलिक चिह्न धारण किए हुए पाँचो भाई चंद्रमा के समान सुदर्शन और सिंह के समान आत्माभिमानी थे। शतशृंग पर रहने वाले ऋषियों ने उनके सभी शास्त्रोक्त संस्कार कराए और पाँचो भाई उन ऋषियों और ऋषि पत्नियों के प्रिय कृपा-पात्र बन कर किसी जलाशय में उगे कमल पुष्पों की तरह शीघ्रता से बढ़ने लगे।

एक दिन माद्री के स्नान करते हुए राजा पाण्डु कामासक्त हो गए तथा रति सुख को व्याकुल हो उठे। पति की इस अवस्था को देख माद्री भी रति हो गयी और रत होने लगी परन्तु पाण्डु ऋषी कदम्ब के श्राप के कारण स्नायु तंत्र की कमजोरी को संभाल नहीं पाए और उनके प्राण पखेरू उड़ गए। तत्पश्चात माद्री भी अपने पति की मृत्यु का दोषी स्वयं को मानते हुए राजा पाण्डु के साथ सती हो गयी। अब माता कुंती के कंधो पर पांचों पांडवों का भार आ गया। उन्होंने न केवल अपने पुत्रो का लालन पालन किया अपितु माद्री के पुत्रो को भी स्नेहयुक्त ममता दी।

माता कुंती उन माताओ में से हैं जिन्होंने अपने पुत्रों को न केवल वीरता का पाठ पढाया अपितु उन्होंने अपने पुत्रों को सदैव मानवता और न्याय का मार्ग भी दिखलाया। यूँ तो माता कुंती का अधिकांश जीवन वनों, पहाड़ों,

गुफाओ, कंदराओ और आश्रमों में गुजरा परन्तु इतना सब होते हुए भी उन्हें कभी वैभव और आरामतलबी से कभी आसक्ति नहीं हुई और न ही उन्होंने अपने पुत्रो को इन सभी संसाधनों से आसक्ति होने दी। ऐसा व्यक्तित्व था माँ कुंती का।

महाराज पाण्डु की मृत्यु के बाद सभी वन वासी ऋषी मुनियों के अनुरोध पर महारानी कुंती अपने पाँचों पांडव पुत्रों के लेकर हस्तिनापुर आ गयीं। पितामह भीष्म ने उन्हें पाण्डु पुत्र राजकुमारों के रूप में स्वीकार अवश्य किया लेकिन कौरवों ने जो दुःख पांडवों पर ढाये उस से समस्त विश्व अवगत है। इतने दुःख सहने पर भी जहाँ तक कुंती माँ का बस चला उन्होंने सम्राट धृतराष्ट्र और उनके पुत्र कौरवों का कभी अहित नहीं चाहा।

माँ कुन्ती ने सदैव परमात्मा से प्रेम के रसमयी प्रकरण को सुना, समझा और मनन किया। माँ कुन्ती ने परमात्मा से मांगा कि हमारे जीवन में निरन्तर विपत्तियां आती रहें क्यों कि विपदाओं में निश्चित रूप से परमात्मा का चिन्तन होता है और तभी भगवान् का दर्शन होता है। दुख की स्थिति में मनुष्य परमात्मा के निकट पहुंच जाता है। कारण जब दुख का समय होता है तो जितने भौतिकवादी जगत के सम्बन्धी होते हैं वह हमसे दूर रहते हैं। और तो और विपत्तियों के समय हम स्वयं भोग से दूर रहते हैं अतः परमात्मा-चिन्तन अधिक हो पाता है दुख में भगवान के पास जाने का मन करता है। सुख के समय तो समय ही नहीं होता है परमात्मा के पास जाने का।

जब माँ कुंती ने वरदान स्वरुप भगवान कृष्ण से विप्पतियाँ ही माँगी:

“विपद: सन्तु ता: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥”

तो स्वयं भगवान् कृष्ण बोले, "बुआ क्या मांग रही हो, आपकी बुद्धि तो नहीं चकरा गई है। बुआ, जब से तुमने जन्म लिया तब से क्या सुख मिला है तुमको? जन्म के बाद पिता के घर को तुम्हें त्यागना पड़ा था। तुम्हारे पिता ने तुम्हें सम्राट कुन्तीभोज को गोद दे दिया था और जब विवाह हुआ तो पति मिले पांण्डु अर्थात पीलिया के रोगी, और उस पर भी उन्हें श्राप मिला कि जब भी विषय-वासना की कामना से पत्नी के पास जायेंगे उनकी तुरन्त मृत्यु हो जायेगी। माता-पिता के घर सुख नहीं मिला। पति के घर सुख नहीं मिला और तो और पति की जब एक दिन अचानक अपनी दूसरी पत्नी के साथ भोग करने की कामना कर उसी समय मृत्यु हो गई तो पति की मृत्यु के बाद जो कष्ट आपने भोगे उनके बारे में विचार करने से मनुष्य डरता है। कभी आपके बेटों को जहर देकर मारने का प्रयास किया गया। कभी लाक्षागृह में पुत्रों को जलाकर मारने का प्रयास किया गया। कभी वनबास हुआ। कभी अज्ञातवास तो कभी दुशासन पवित्र द्रौपदी को हाथ पकड़कर खींचता हुआ लाता है और उसे दरबार में सबके सामने निःवस्त्र करने का प्रयास करता है। पौत्र अभिमन्यू, उसे अन्याय से पापी कौरवों ने युद्ध में मार दिया। पांच अन्य पौत्रों को सोते में छल से अश्वत्थामा ने मार दिया। आपको जीवन में सिर्फ़ दुःख ही दुःख तो मिले हैं बुआ, और आज फ़िर दुःख मांगती हो। बुआ कितना प्रेम है आपको मुझसे। मेरे स्मरण एवं मेरे दर्शन के लिये दुःख मांगती हो बुआ। मैं इस प्रेम का ही तो भूखा हूँ बुआ और यह कह कर भगवान् कृष्ण कुन्ती से लिपट जाते हैं भगवान् कृष्ण और बुआ दोनो के नेत्र अश्रुओं से भर जाते हैं।

माँ कुंती अपना सर भगवान् कृष्ण के कंधे पर रखकर फूट फूट रोती हैं। कन्हैया, अगर तू मेरी और मेरे पुत्रों की सहायता ना करता तो मेरा और मेरे पुत्रों का क्या होता? मेरे इन पांच पांडवों के अतिरिक्त तूने छटे पांडव का भी उद्धार किया। उसे वह गती दी जो संभवतः मेरे इन पांच पांडव पुत्रों को कभी ना मिल सके। तेरे उपकार मैं कैसे भुला सकती हूँ?

जब कर्ण, छटे पांडव मृत्युशैया पर लेटे हुए थे तब भगवान कृष्ण उनके पास आए और उनकी दानवीर होने की परीक्षा लेने लगे। जब भगवान कृष्ण ने कर्ण से दान मांगा तो कर्ण ने कहा कि उसके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। भगवान कृष्ण ने कर्ण से उनका सोने का दांत मांग लिया। कर्ण ने अपने पास पड़े पत्थर को उठाकर उससे अपना दांत तोड़ा और भगवान कृष्ण को दे दिया। कर्ण ने सिद्ध कर दिया कि उनसे बड़ा दानवीर पूरी दुनिया में कोई नहीं है। तब भगवान् कृष्ण ने कर्ण से वरदान मांगने को कहा। कर्ण ने भगवान कृष्ण से कहा कि एक निर्धन सूत पुत्र होने की वजह से उनके साथ बहुत छल हुआ है। भगवान् कृष्ण ने कर्ण से कहा कि वह अपने आप को सूत्र पुत्र ना कहे। वह तो छटा पांडव है। हे कन्हैया अगर तुम मुझे वरदान ही देना चाहते हो तो मेरा अंतिम संस्कार आपके ही द्वारा ऐसे स्थान पर हो जहां कोई पाप ना हो। पूरी पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं होने के कारण भगवान कृष्ण ने कर्ण का अंतिम संस्कार अपने ही हाथों पर किया। इस तरह दानवीर कर्ण मृत्यु के पश्चात साक्षात् वैकुण्ठ धाम को प्राप्त हुए। माँ कुंती यह सब स्मरण कर बस रोती ही जाती थीं।

अपने को सम्हाल कर माँ कुंती भगवान कृष्ण की स्तुति करने लगती हैं।

“कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥”

“कुंती कहती हैं: हे कृष्ण , हे वाशुदेव, हे देवकीनंदन , हे नन्द के लाला , हे गोविन्द आपको मेरा प्रणाम !”

“नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजाङ्घ्रये ।।”

“जिनकी नाभि से ब्रह्मा का जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जिन्होंने कमलों की माला धारण की है, जिनके नेत्र कमल के समान विशाल और

कोमल है और जिनके चरणों में कमल चिह्न हैं ऐसे हे कृष्ण आपको बार बार वंदन है।"

माँ कुंती ने हमें सन्देश दिया:

आराधितो यदि हरिस तपसा तत: किं।

"अगर तुम भगवान् कृष्ण की पूजा करने में सक्षम हो, तो कोई अन्य अधिक तपस्या की जरूरत नहीं है।"

स्वरूपसिद्ध होना या भगवान को जानने के लिए इतनी सारी प्रक्रियाएँ तपस्याएँ हैं। कभी कभी हम विचार करते हैं, भगवान कहाँ हैं? यह जानने के लिए विभिन्न प्रक्रियाएँ हैं। लेकिन शास्त्र कहते हैं कि वास्तव में अगर तुम कृष्ण की पूजा कर रहे हो तो तुम्हे गंभीर तपस्या से गुज़रने की आवश्यकता नहीं है।

नाराधितो, नाराधितो यदि हरिस तपसा तत: किं।

"गंभीर तपस्या से गुज़रने के बाद भी कृष्ण को जानना संभव नहीं।"

माँ कुंती कहती हैं कि यद्यपि कृष्ण भीतर और बाहर सर्व स्थान पर हैं, उन्हें देखने के लिए हमारी आँखें सक्षम नहीं है। भगवान् कृष्ण कुरुक्षेत्र की लड़ाई में उपस्थित थे लेकिन केवल पांच पांडव, छटे पांडव कर्ण और पितामह भीष्म और मां कुंती ही समझ सके थे कि कृष्ण पुरुषोत्तम भगवान हैं। और सभी ने तो उन्हें एक साधारण इंसान के रूप में ही समझा।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषिं तनुमाश्रितम्।

यद्यपि वे मानव समाज के प्रति बहुत दयालु थे एवं वे व्यक्तिगत रूप से अवतरित हुए फिर भी उन्हें देखने के लिए लोगो की आँखें सक्षम नहीं थी। वे नहीं देख सके। इसलिए कुंती कहती हैं अलक्ष्यम्, "आप दिखाई नहीं देते हो, हॉलाकि:

आप अंत: बहि: सर्व भूतानाम्।

माँ कुंती का सन्देश था कि हर किसी के हृदय में भगवान् कृष्ण स्थित हैं।

ईष्वर: सर्वभूतानां हृद्देशे।

हृद्देशे, यहाँ हृदय में, कृष्ण हैं।

इसलिए, ध्यान, योग सिद्धांत आदि का एक मात्र मूल्य उद्देश्य होना चाहिए कि कैसे हृदय के भीतर कृष्ण का पता लगाएँ। यही ध्यान की मुख्य परिभाषा है। भगवान् कृष्ण की स्थिति हमेशा उत्कृष्ट है। अगर हम इस दिव्य प्रक्रिया, कृष्ण भावनामृत को स्वीकार करते हैं तो विधि-विधानों की भी आवश्यकता नहीं और इस प्रकार पापमय जीवन से मुक्त होने का प्रयास कर सकते हैं। भगवान् कृष्ण को तुम तब तक ना ही देख सकते हो ना ही पा सकते हो जब तक तुम पाप कार्य रत हो। तब यह सम्भव नहीं।

न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:।

ऐसी सत्य मार्गा, अत्यंत सहनशील भगवान् कृष्ण की प्रिय भक्त माँ कुंती क्यों ना प्रात: स्मरणीय हों? महाऋषी वेद व्यास जी ने माँ कुंती को यह आसन देकर हम सब को शिक्षा प्रदान की है - माँ की तरह सत्य व्रत धारण करने वाले सहनशील एवं भगवद्भक्त बनने की।

अध्याय ५ - पंचम पंचकन्या द्रोपदी

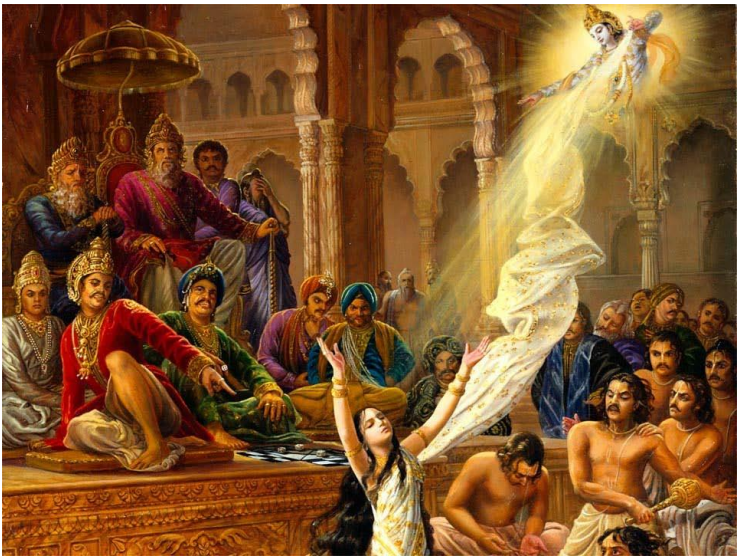

महाभारत की नायिका द्रौपदी भी पंचकन्याओं में से एक हैं और प्रातः स्मरणीय एवं पूज्यनीय हैं। पांच पतियों की पत्नी बनने बाली द्रौपदी का व्यक्तित्व उदाहरण स्वरुप है। द्रौपदी को महाऋषीवेद व्यास ने यह वरदान दिया था कि पांचों भाइयों की पत्नी होने के बाद भी उनका कौमार्य कायम रहेगा।

द्रोपदी का जन्म भगवान् शंकर एवं भगवान् कृष्ण की इक्षा एवं वरदान से द्वापर युग में अधर्मीयों का विनाश करने के लिए एवं धर्म स्थापित करने के लिए हुआ था। अपने समस्त जीवन में माँ कुंती की तरह उन्होंने हर

प्रकार से धर्म का पालन किया, अधर्मियों के विनाश का कारण बनी और अंत में अपने पतियों के साथ मोक्ष प्राप्ति की।

महाभारत ग्रंथ के अनुसार एक बार राजा द्रुपद ने कौरवो और पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य का अपमान कर दिया था। गुरु द्रोणाचार्य इस अपमान को भूल नहीं पाए। इसलिए जब पण्डवों और कौरवों ने शिक्षा समाप्ति के पश्चात गुरु द्रोणाचार्य से गुरु दक्षिणा माँगने को कहा तो उन्होंने उनसे गुरु दक्षिणा में राजा द्रुपद को बंदी बनाकर अपने समक्ष प्रस्तुत करने को कहा। पहले कौरव राजा द्रुपद को बंदी बनाने गए पर वो द्रुपद से हार गए। कौरवों के पराजित होने के बाद पांडव गए और उन्होंने द्रुपद को बंदी बनाकर द्रोणाचार्य के समक्ष प्रस्तुत किया। द्रोणाचार्य ने अपने अपमान का बदला लेते हुए द्रुपद का आधा राज्य स्वयं के पास रख लिया और शेष राज्य द्रुपद को देकर उसे रिहा कर दिया।

गुरु द्रोण से पराजित होने के उपरान्त महाराज द्रुपद अत्यन्त लज्जित हुये और उन्हें किसी प्रकार से नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगे। इसी चिन्ता में एक बार वे घूमते हुये कल्याणी नगरी के ब्राह्मणों की बस्ती में जा पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट याज तथा उपयाज नामक महान कर्मकाण्डी ब्राह्मण भाइयों से हुई। राजा द्रुपद ने उनकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न कर लिया एवं उनसे द्रोणाचार्य के मारने का उपाय पूछा। उनके पूछने पर बड़े भाई याज ने कहा, "इसके लिये आप एक विशाल यज्ञ का आयोजन करके अग्निदेव को प्रसन्न कीजिये जिससे कि वे आपको महान बलशाली पुत्र का वरदान दें।" महाराज ने याज और उपयाज से उनके कहे अनुसार यज्ञ करवाया। उनके यज्ञ से प्रसन्न हो कर अग्निदेव ने उन्हें एक ऐसा पुत्र दिया जो सम्पूर्ण आयुध एवं कवच कुण्डल से युक्त था। उसके पश्चात् उस यज्ञ कुण्ड से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसके नेत्र खिले हुये कमल के समान देदीप्यमान थे। भौंहें चन्द्रमा के समान वक्र थीं तथा उसका वर्ण श्यामल था। उसके उत्पन्न होते ही एक आकाशवाणी हुई कि इस बालिका का जन्म अधर्मी क्षत्रियों के सँहार के हेतु हुआ है। बालक का नाम धृष्टद्युम्न एवं बालिका

का नाम कृष्णा रखा गया जो कि राजा द्रुपद की बेटी होने के कारण द्रौपदी कहलाई।

पौराणिक कथाओं के अनुसार द्रोपदी पूर्व जन्म में एक अत्यंत रूपवती, गुणवती और सदाचारिणी ऋषि-कन्या थी। कुछ पूर्वजन्मों के कर्मों के कारण किसी ने उन्हें पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया। इससे दुखी होकर वह भगवान् शिव की तपस्या करने लगी। उनकी उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव प्रगट हुए और उन्होंने द्रौपदी से मनचाहा वरदान मांगने के लिए कहा। इस पर द्रौपदी इतनी प्रसन्न हो गई कि उसने पांच बार कहा, "मैं सर्वगुणयुक्त पति चाहती हूं।" भगवान शंकर ने कहा तूने मनचाहा पति पाने के लिए मुझसे पांच बार प्रार्थना की है अतः तुझे दुसरे जन्म में एक नहीं पांच पति मिलेंगे। तब द्रौपदी ने कहा मैं तो आपकी कृपा से केवल एक ही पति चाहती हूं। इस पर भगवान् शिवजी ने कहा कि मेरा वरदान तो व्यर्थ नहीं जा सकता, तुझे पांच पति ही प्राप्त होंगे लेकिन महाऋषी वेद व्यास से तुझे वरदान प्राप्त होगा जिससे तेरा पांच पति होने पर भी कौमार्य नष्ट नहीं होगा।

कालान्तर में अग्नि कुंड से द्रुपद गृह में द्रोपदी का जन्म हुआ। जैसे जैसे द्रोपदी युवा होती गयीं उनका सौन्दर्य निखरता गया तथा उनकी सुंदरता के चर्चे पूर्ण आर्यावृत में फैल गए। द्रोपदी के विवाह का समय निकट आया। सम्राट द्रुपद चाहते थे कि उनकी पुत्री का विवाह एक ऐसे वीर वर से हो जो उनका बदला द्रोणाचार्य से ले सके। लेकिन द्रोण को पराजित करना सरल नहीं था। वे भगवान् परशुराम के शिष्य एवं स्वयं भी एक बड़े ही वीर योद्धा और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर थे। बहुत विचार करने के बाद उन्हें अर्जुन ही द्रोपदी के लिए उपयुक्त वर सूझा। लेकिन अभाग्य से उसी समय उन्हें अर्जुन का वारणावत अग्निकांड में मृत्यु का समाचार मिला। इसलिए उन्होंने दूसरे योद्धाओं के बारे में विचार किया। तब उनका ध्यान यादवों के एकछत्र नेता कृष्ण की ओर गया जो अपने अनेक महान् वीरतापूर्ण कार्यों से आर्यावर्त के सर्वश्रेष्ठ योद्धा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे।

उन्होने कृष्ण को पांचाल आमंत्रित किया और उनके आने पर उनसे अपनी पुत्री द्रोपदी का पाणिग्रहण करने की प्रार्थना की। उस समय तक द्रोपदी आर्यावर्त की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी। उनसे विवाह करके कोई भी राजा या राजकुमार स्वयं को धन्य मानता। लेकिन कृष्ण ने उनकी पुत्री के साथ विवाह करने से विनम्रतापूर्वक मना कर दिया क्योंकि वे द्रोपदी को भगवान् शिव शंकर के दिए वरदान के बारे में जानते थे। उन्हें पता था कि द्रोपदी का जन्म तो पांच पांडवों को पति के रूप में प्राप्त होने एवं अधर्मी क्षत्रियों के विनाश होने का कारण मूल के लिए हुआ है।

कृष्ण के अस्वीकार से द्रुपद बहुत निराश हुए। उनकी निराशा को देखते हुए कृष्ण ने उनसे कहा कि मैं द्रोपदी को बहिन के रूप में देखता हूँ और एक भाई की तरह उसके योग्य सर्वश्रेष्ठ वर का चुनाव करने में आपकी सहायता करना चाहता हूँ। द्रुपद ने उनको बताया कि वे आर्यावर्त के सर्वश्रेष्ठ योद्धा या धनुर्धर के साथ ही द्रोपदी का विवाह करना चाहते हैं, ताकि वह द्रोण को पराजित करके उनके अपमान का बदला चुका सके। भगवान् कृष्ण को विदुर और महामुनि व्यास से यह पता चल गया था कि पांडव जीवित बच गये हैं लेकिन उन्होंने द्रुपद को यह बात नहीं बतायी। उन्होंने द्रुपद को सलाह दी कि द्रोपदी के स्वयंवर में धनुर्वेद की एक बहुत कठिन प्रतियोगिता रखिये। जो उस प्रतियोगिता में विजयी होगा, वह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होगा। उसके साथ द्रोपदी का विवाह करने पर द्रुपद की इच्छा पूरी हो सकती है। द्रुपद को उनकी सलाह अच्छी लगी और फिर उन्होंने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया।

कुंती तथा पांडवों ने द्रौपदी के स्वयंवर के विषय में सुना तो वे लोग भी सम्मिलित होने के लिए धौम्य को अपना पुरोहित बनाकर पांचाल देश पहुंचे। कौरवों से छुपने के लिए उन्होंने ब्राह्मण वेश धारण कर रखा था तथा एक कुम्हार की कुटिया में रहने लगे। राजा द्रुपद द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ करना चाहते थे। लाक्षागृह की घटना सुनने के बाद भी उन्हें यह

विश्वास नहीं होता था कि पांडवों का निधन हो गया है। अत: द्रौपदी के स्वयंवर के लिए उन्होंने यह शर्त रखी कि निरंतर घूमते हुए यंत्र के छिद्र में से जो भी वीर निश्चित धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़ाकर दिये गये पांच बाणों से छिद्र के ऊपर लगे लक्ष्य को भेद देगा उसी के साथ द्रौपदी का विवाह कर दिया जायेगा। वह जानते थे कि इतनी कठिन परिक्षा में केवल अर्जुन ही सफल हो सकते हैं। ब्राह्मणवेश में पांडव भी स्वयंवर-स्थल पर पहुंचे। कौरव आदि अनेक राजा तथा राजकुमार तो धनुष की प्रत्यंचा के धक्के से भूमिसात हो गये। कर्ण ने धनुष पर बाण चढ़ा तो लिया किंतु कृष्ण का संकेत समझकर द्रोपदी ने सूत-पुत्र कर्ण से विवाह करने से मना कर दिया। अत: कर्ण द्वारा लक्ष्य भेदने का प्रश्न ही नहीं उठा। अर्जुन ने छद्मवेश में पहुंचकर लक्ष्य भेद दिया तथा द्रौपदी को प्राप्त कर लिया। कृष्ण उसे देखते ही पहचान गये। शेष उपस्थित राजाओं में यह विवाद का विषय बन गया कि एक क्षत्रिय कन्या ब्राह्मण को क्यों दी जाय? अर्जुन तथा भीम के रण-कौशल तथा कृष्ण की नीति से शांति स्थापित हुई तथा अर्जुन और भीम द्रौपदी को लेकर डेरे पर पहुंचे। उनके माँ कुंती से यह कहने पर कि वे लोग भिक्षा लाये हैं, उन्हें बिना देखे ही कुंती ने कुटिया के अंदर से कहा कि सभी मिलकर उसे ग्रहण करो। पुत्रवधू को देखकर अपने वचनों को सत्य रखने के लिए कुंती ने पांचों पांडवों को द्रौपदी से विवाह करने के लिए कहा। द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न उन लोगों के पीछे पीछे छुपकर आया था। वह यह तो नहीं जान पाया कि वे सब कौन हैं पर स्थान का पता चलाकर पिता की प्रेरणा से उसने उन सबको अपने घर पर भोजन के लिए आमन्त्रित किया। द्रुपद को यह जानकर कि वे पांडव हैं बहुत प्रसन्नता हुई किंतु यह सुनकर विचित्र लगा कि वे पांचों पांडव द्रौपदी से विवाह करने जा रहे हैं। तभी व्यास मुनि ने अचानक प्रकट होकर एकांत में द्रुपद को उन छहों के पूर्वजन्म की कथा सुनायी। एक वार रुद्र ने पांच इन्द्रों को उनके दुरभिमान स्वरूप यह शाप दिया था कि वे मानव रूप धारण करेंगे। उनके पिता क्रमश: धर्म, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमार (द्वय) होंगे। भूलोक पर उनका विवाह स्वर्गलोक की लक्ष्मी के मानवी रूप से होगा। वह मानवी द्रौपदी है तथा वे पांचों इन्द्र पांडव हैं। व्यास मुनि के व्यवस्था देने पर द्रौपदी का विवाह क्रमश: पांचों

पांडवों से कर दिया गया। इस तरह से पांचो पांडवो से विवाह करके द्रौपदी पांचाली कहलाई।

इस योजना के सफल होने के कारण द्रुपद कृष्ण का बहुत सम्मान करते थे और उनकी पुत्री द्रोपदी भी कृष्ण को अपने सगे बड़े भाई जितना प्यार और सम्मान देती थी।

बाद में कृष्ण ने अपनी सगी बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से कराया तो स्वाभाविक रूप से सबको यह चिन्ता हुई कि द्रोपदी अपनी सौत को किस प्रकार स्वीकार करेगी। इसका समाधान करने के लिए कृष्ण की सलाह पर ही सुभद्रा ने द्रोपदी को अपना परिचय अर्जुन की पत्नी के बजाय कृष्ण की बहिन के रूप में दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वे दोनों हमेशा सगी बहिनों की तरह प्यार और सद्भाव के साथ रहीं। कृष्ण और द्रोपदी का सम्बंध एक आदर्श भाई-बहिन की तरह हमेशा बना रहा। द्रोपदी उनके ऊपर बहुत विश्वास करती थी और उनकी सलाह पर चलती थी। कृष्ण भी हर संकट के समय उनकी सहायता करते थे, जैसा कि महाभारत से पता चलता है।

द्रौपदी पांच पांडवों से पांच पुत्रों की माता बनी थी। उनके पांच पुत्रों के नाम थे - युधिष्ठिर से 'प्रतिविंध्य', भीम से 'श्रुतसोम', अर्जुन से 'श्रुतकर्मा', नकुल से 'शतानीक' एवं सहदेव से 'श्रुतसेन'।

द्रौपदी उच्च कोटि की पतिव्रता एवं भगवद भक्ता थी। उन की भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अविचल प्रीति थी। ये उन्हें अपना सखा, रक्षक, हितैषी एवं परम आत्मीय तो मानती ही थी। उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्ता में भी इसका पूर्ण विश्वास था। जब कौरवों की सभा में दुष्ट दु:शासन ने द्रौपदी को नग्न करना चाहा और सभासदों में से किसी का साहस न हुआ कि इस अमानुषी अत्याचार को रोके, उस समय अपनी लाज

बचाने का कोई दूसरा उपाय न देखकर उसने अत्यन्त आतुर होकर भगवान श्रीकृष्ण को पुकारा।

गोविन्दो द्वारकावासिन् कृष्णी गोपीजनप्रिय।।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन।।
कौरवार्णवमग्नांथ मामुद्धरस्व जनार्दन।
कृष्णर कष्ण् महायोगिन्विश्वातिमन विश्व भावन।।
प्रपन्नांम पाहि गोविन्द। कुरुमध्येशअवसीदतीम।।

"हे गोविन्द! हे द्वारकावासी! हे सच्चिदानन्दस्वरूप प्रेमघन! हे गोपीजनवल्लभ! हे केशव! मैं कौरवों के द्वारा अपमानित हो रही हूँ, इस बात को क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ, हे आर्तिनाशन जनार्दन! मैं कौरव समुद्र में डूब रही हूँ। आप मुझे इससे निकालिये। कृष्ण! कृष्णे! महायोगी! विश्वात्मा! विश्व के जीवनदाता गोविन्द! मैं कौरवौं से घिरकर बडे संकट में पडी हुई हूँ, आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।"

सच्चे हृदय की करुण पुकार भगवान तुरंत सुनते हैं। श्रीकृष्ण उस समय द्वारका में थे। वहाँ से वे तुरंत दौड़े आये और धर्मरूप से द्रौपदी के वस्त्रों के रूप में प्रकट होकर उनकी लाज बचायी। भगवान की कृपा से द्रौपदी की साड़ी अनन्तगुना बढ़ गयी। दु:शासन उसे जितना ही खींचता था, उतना ही वह बढ़ती जाती थी। देखते ही देखते वहाँ वस्त्र का ढेर लग गया। महाबली दुशासन की दस हज़ार हाथियों के बलबाली प्रचण्ड भुजाएं थक गयीं, परन्तु साड़ी का छोर हाथ नहीं आया।

'दस हज़ार गजबल थक्यौ, घट्यौ न दस गज चीर।"

वहाँ उपस्थित सारे सभाजनों ने भगवद्भक्ति एवं पतिव्रता का अद्भुत चमत्कार देखा। अन्त में दुशासन हारकर लज्जित होकर बैठ गया। भक्तावत्सल पुभु ने अपने भक्त की लाज रख ली।

भगवान् कृष्ण ने द्रोपदी को अनन्य भक्त मानते हुए उनके कभी भी स्मरण करने पर सहायता की।

एक दिन की बात है। पांडव द्रौपदी के साथ काम्यभक वन में निवास कर रहे थे। दुर्योधन के भेजे हुए महर्षि दुर्वासा अपने दस हज़ार शिष्यों को साथ लेकर पांडवों के पास आये। दुष्ट दुर्योधन ने जान-बूझकर उन्हें ऐसे समय भेजा जबकि सब लोग भोजन करके विश्राम कर रहे थे। महाराज युधिष्ठिर ने अतिथि सेवा के उद्देश्य से ही भगवान सूर्यदेव से एक ऐसा चमत्कारी बर्तन प्राप्त किया था जिसमें पकाया हुआ थोड़ा सा भी भोजन अक्षय हो जाता था। परंतु उसमें शर्त यह थी कि जब तक द्रौपदी भोजन नहीं कर चुकती थी तभी तक उस बर्तन में यह चमत्कार रहता था। युधिष्ठिर ने महर्षि को शिष्यमण्डली के सहित भोजन के लिये आमन्त्रित किया। दुर्वासा जी स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होने के लिये सबके साथ गंगातट पर चले गये।

दुर्वासा जी के साथ दस हज़ार शिष्यों का एक पूरा का पूरा विश्वविद्यालय चला करता था। धर्मराज ने उन सबको भोजन का निमन्त्रण तो दे दिया और ऋषि ने उसे स्वीकार भी कर लिया परन्तु किसी ने भी इसका विचार नहीं किया कि द्रौपदी भोजन कर चुकी है, इसलिये सूर्य के दिये हुए बर्तन से तो उन लोगों के भोजन की व्यवस्था हो नहीं सकती थी। द्रौपदी बड़ी चिन्ता में पड़ गयी। उन्होंने सोचा "ऋषि यदि बिना भोजन किये वापस लौट जाते हैं तो वे बिना शाप दिये नहीं मानेंगे" उनका क्रोधी स्वभाव जगत विख्यात था। द्रौपदी को और कोई उपाय नहीं सूझा। तब उन्होंने मन ही मन भक्तभयभंजन भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण किया और इस आपत्ति से उबारने की उनसे विश्वासपूर्ण प्रार्थना करते हुए अन्त में कहा- "आपने जैसे

सभा में दु:शासन के अत्याचार से मुझे बचाया था, वैसे ही यहाँ भी इस महान संकट से तुरंत बचाइये।

दु:शासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव संकटादस्मान्मीयुत्रर्तुमिहार्हसि।।

श्रीकृष्ण तो सदा सर्वत्र निवास करते और घट-घट की जानने वाले हैं। वे तुरंत वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर द्रौपदी के शरीर में मानो प्राण लौट आये। डूबते हुए को मानो सच्चा सहारा मिल गया। द्रौपदी ने संक्षेप में उन्हें सारी बात सुना दी। श्रीकृष्ण ने अधीरता प्रदर्शित करते हुए कहा, "और सब बात पीछे होगी पहले मुझे जल्दी से कुछ खाने को दो। मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम जानती नहीं हो मैं कितनी दूर से हारा थका आया हूँ।" द्रौपदी लाज के मारे गड़-सी गयी। उन्होंने रुकते रुकते कहा, "प्रभो! मैं अभी अभी खाकर उठी हूँ। अब तो उस बर्तन में कुछ भी नहीं बचा है।" श्रीकृष्ण ने कहा, "जरा अपना बर्तन मुझे दिखाओ तो सही" कृष्णा उसे ले आयी। श्रीकृष्ण ने हाथ में लेकर देखा तो उसके गले में उन्हें एक साग का पत्ता लगा हुआ मिला। उन्होंने उसी को मुंह में डालकर कहा, "इस साग के पत्ते से सम्पूर्ण जगत के आत्मा यज्ञभोक्ता परमेश्वर तृप्त हो जायँ।" इसके बाद उन्होंने सहदेव से कहा, "भैया! अब तुम मुनीश्वरों को भोजन के लिये बुला लाओ। सहदेव ने गंगातट पर जाकर देखा तो वहाँ उन्हें कोई नहीं मिला। बात यह हुई कि जिस समय श्रीकृष्ण ने साग का पत्ता मुंह में डालकर वह संकल्प किया, उस समय मुनीश्वर लोग जल में खडे होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन्हें अकस्मात ऐसा अनुभव होने लगा मानो जैसे उन सबका पेट गले तक अन्न से भर गया हो। वे सब एक दूसरे के मुंह की ओर ताकने लगे और कहने लगे कि अब हम लोग वहाँ जाकर क्या खायेंगे? दुर्वासा ने चुपचाप भाग जाना ही श्रेयस्कर समझा क्योंकि वे यह जानते थे कि पांडव भगवद्भक्त हैं। अम्बरीष के यहाँ उन पर जो कुछ बीती थी उसके बाद से उन्हें भगवद्भक्तो से बड़ा डर लगने लगा था। बस सब लोग वहाँ से चुपचाप भाग निकले। सहदेव को वहाँ रहने वाले तपस्वियों से उन सबके भाग जाने का

समाचार मिला और उन्होंने लौटकर सारी बात धर्मराज से कह दी। इस प्रकार द्रौपदी की श्रीकृष्ण भक्ति से पांडवों की एक भारी विपत्ति सहज ही टल गयी। श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें महर्षि दुर्वासा के दुर्दनीय क्रोध से बचा लिया और इस प्रकार अपनी शरणागत वत्सलता का परिचय दिया।

पांडवों को इंद्रप्रस्थ का राज्य मिलने के बाद उनके द्वारा इंद्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर श्रीकृष्ण द्वारका चले गये थे। शाल्व ने अपने कामचारी विमान सौभ के द्वारा उत्पात मचा रखा था। पहुँचते ही केशव ने शाल्व पर आक्रमण किया। सौभ को गदाघात से चूर्ण करके, शाल्व तथा उसके सैनिकों को परमधाम भेजकर जब वे द्वारका में लौटे तब उन्हें पांडवों के जुए में हारने का समाचार मिला। वे सीधे हस्तिनापुर आये और वहाँ से जहाँ वन में पांडव अपनी स्त्रियों, बालकों तथा प्रजावर्ग एवं विप्रों के साथ थे, पहुँचे। पांडवों से मिलकर उन्होंने कौरवों के प्रति रोष प्रकट किया।

द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से वहाँ कहा, "मधुसूदन! मैंने महर्षि असित और देवल से सुना है कि आप ही सृष्टिकर्ता हैं। परशुराम जी ने बताया था कि आप साक्षात अपराजित विष्णु हैं। आप ही यज्ञ, ऋषि, देवता तथा पंचभूतस्वरूप हैं। जगत आपके एक अंश में स्थित है। त्रिलोकी में आप व्याप्त हैं। निर्मलहृदय महर्षियों के हृदय में आप ही स्फुरित होते हैं। आप ही ज्ञानियों तथा योगियों की परम गति हैं। आप विभु हैं, सर्वात्मा हैं, आपकी शक्ति से ही सबको शक्ति प्राप्त होती है। आप ही मृत्यु, जीवन एवं कर्म के अधिष्ठाता हैं। आप ही परमेश्वर हैं। मैं अपना दु:ख आपसे न कहूँ तो किससे कहूँ।" यों कहते कहते द्रौपदी के नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लग गयी। वह फुफकार मारती हुई कहने लगी, "मैं महापराक्रमी पांडवों की पत्नी, धृष्टद्युम्न की बहन और आपकी सखी हूँ। कौरवों की भीर सभा में मेरे केश पकड़कर मुझे घसीटा गया। मैं एकवस्त्रा रजस्वला थी। मुझे नग्न करने का प्रयत्न किया गया। ये मेरे पति मेरी रक्षा न कर सके। इसी नीच दुर्योधन ने भीम को विष देकर जल में बांधकर फेंक दिया था। इसी दुष्ट ने पांडवों को

लाक्षावन में भस्म करने का प्रयत्न किया था। इसी पिशाच ने मेरे केश पकड़कर घसीटवाया और आज भी वह जीवित है"

पांचाली फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी वाणी अस्पष्ट हो गयी। वह श्रीकृष्ण को उलाहना दे रही थी- "तुम मेरे सम्बन्धी हो, मैं अग्नि से उत्पन्न गौरवमयी नारी हूं, तुम पर मेरा पवित्र अनुराग है, तुम पर मेरा अधिकार है और रक्षा करने में तुम समर्थ हो। तुम्हारे रहते मेरी यह दशा हो रही है।"

भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण और न सुन सके। उन्होंने कहा, "कल्याणी! जिन पर तुम रुष्ट हुई हो, उनका जीवन समाप्त हुआ समझो। उनकी स्त्रियां भी इसी प्रकार रोयेंगी और उनके अश्रु सूखने का मार्ग नष्ट हो चुका रहेगा। थोड़े दिनों में अर्जुन के बाणों से गिरकर वे शृगाल और कुत्तों के आहार बनेंगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम सम्राज्ञी बनकर रहोगी। आकाश फट जाये। समुद्र सूख जाय। हिमालय चूर हो जाय। पर मेरी बात असत्य न होगी, न होगी।"

इसी यात्रा में एक दिन बातों ही बातों में सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा, "बहन! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ कि तुम्हारे शूरवीर और बलवान पति सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं। इसका कारण क्या है? क्या तुम कोई जन्तर मन्तर या औषधि जानती हो अथवा क्या तुमने जप, तप, व्रत, होम या विद्या से उन्हें वश में कर रखा है? मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे भगवान श्यामसुन्दर मेरे वश में हो जायं।" देवी द्रौपदी ने कहा, "बहन! आप श्यामसुन्दर की पटरानी एवं प्रियतमा होकर कैसी बातें कर रही हैं? सती साध्वी स्त्रियां जंतर मंतर आदि से उतनी ही दूर रहती हैं, जितनी सांप बिच्छू से। क्या पति को जंतर मंतर आदि से वश में किया जा सकता है? भोली भाली अथवा दुराचारिणी स्त्रियां ही पति को वश में करने के लिए इस प्रकार के प्रयोग किया करती हैं। ऐसा करके वे अपना तथा अपने पति का अहित ही करती हैं। ऐसी स्त्रियों से तो सदा दूर रहना चाहिये।"

इसके बाद द्रौपदी ने बतलाया कि अपने पतियों को प्रसन्न रखने के लिये वह किस प्रकार का आचरण करती थी। उन्होंने कहा, "बहन! मैं अहंकार और काम क्रोध का परित्याग करके बड़ी सावधानी से सब पांडवों की सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्या से दूर रहती हूँ और मन को वश में रखकर केवल सेवा की इच्छा से ही अपने पतियों के मन रखती हूँ। मैं कटुभाषण से दूर रहती हूं। असभ्यता से खड़ी नहीं होती। खोटी बातों पर दृष्टि नहीं डालती। बुरी जगह पर नहीं बैठती। दूषित आचरण के पास नहीं फटकती तथा पतियों के अभिप्रायपूर्ण संकेतों का अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, धनी अथवा रूपवान, कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पांडवों के सिवाय और कहीं नहीं जाता। अपने पतियों के भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती। जब जब मेरे पति घर आते हैं, तब तब मैं खड़ी होकर उन्हें आसन और जल देती हूँ। मैं घर के बर्तनां को मांज-धोकर साफ रखती हूँ। मधुर रसोई तैयार करती हूँ। समय पर भोजन कराती हूँ। सदा सजग रहती हूँ। घर में अनाज की रक्षा करती हूँ और घर को झाड़ बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीत में किसी का तिरस्कार नहीं करती। कुलटा स्त्रियों के पास नहीं फटकती और सदा ही पतियों के अनुकूल रहकर आलस्य से दूर रहती हूँ। मैं दरवाज़े पर बार-बार जाकर खड़ी नहीं होती तथा खुली अथवा कूड़ा करकट डालने की जगह पर भी अधिक नहीं ठहरती। सदा ही सत्यभाषण और पतिसेवा में तत्पर रहती हूँ। पतिदेव के बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। जब किसी कौटुम्बिक कार्य से पतिदेव बाहर चले जाते हैं, तब मैं पुष्प और चन्दनादि को छोड़कर नियम और व्रतों का पालन करती हुई समय बिताती हूँ। मेरे पति जिस चीज को नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, मै भी उससे दूर रहती हूँ। स्त्रियों के लिये शास्त्र ने जो जो बातें बतायी हैं, उन सबका में पालन करती हूँ। शरीर को यथाप्राप्त वस्त्रालंकारों से सुसज्जित रखती हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेव का प्रिय करने में तत्पर रहती हूँ।"

"सास माँ जी ने मुझे कुटुम्ब सम्बन्धियों के प्रति जो जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्यौहारों पर पकवान बनाना, माननीयों का आदर करना तथा और भी मेरे लिये जो जो धर्म विहित है, उन सभी का मैं सावधानी से रात दिन आचरण करती हूँ। मैं विनय और नियमों को सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ। मेरे विचार से तो स्त्रियों का सनातन धर्म पति के अधीन रहना ही चाहिए। वही उनके इष्टदेव है। मैं अपने पतियों से बढ़कर कभी नहीं रहती। उनसे अच्छा भोजन नहीं करती। उनसे बढ़िया वस्त्राभूषण नहीं पहनती और न कभी सास माँ जी से वाद विवाद करती हूँ। सदा ही संयम का पालन करती हूँ। मैं सदा अपने पतियों से पहले उठती हूँ तथा बड़े बूढ़ों की सेवा में लगी रहती हूँ। अपनी सास माँ की मैं भोजन, वस्त्र और जल आदि से सदा ही सेवा करती रहती हूँ। वस्त्र, आभूषण और भोजनादि में मैं कभी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती। पहले महाराज युधिष्ठिर के दस हज़ार दासियां थीं। मुझे उन सबके नाम, रूप, वस्त्र आदि सब का पता था और इस बात का भी ध्यान रहता था कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं। जिस समय इंद्रप्रस्थ में रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोडे और उतने ही हाथी चलते थे। उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही किया करती और मैं ही उनकी आवश्यकताएं सुनती थी। अन्त:पुर के ग्वालों और गडरियों से लेकर सभी सेवकों के काम-काज की देख-रेख भी मैं ही किया करती थी।

महाराज की जो कुछ आय, व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी। पांडव लोग कुटुम्ब का सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा पाठ में लगे रहते थे और आये गयों को स्वागत सत्कार करते थे। मैं सब प्रकार का सुख छोड़कर उसकी सँभाल करती थी। मेरे पतियों का जो अटूट खजाना था, उसका पता भी मुझ एक को ही था। मैं भूख-प्यास को सहकर रात दिन पांडवों की सेवा में लगी रहती। उस समय रात और दिन मेरे लिये समान हो गये थे। मैं सदा ही सबसे पहले उठती और सबसे पीछे सोती थी। सत्यभामा जी! पतियों को अनुकूल करने का मुझे तो यही उपाय

मालूम है।" एक आदर्श गृहपत्नी को घर में किस प्रकार रहना चाहिये, इसकी शिक्षा और प्रेरणा द्रौपदी के जीवन से सहज ही प्राप्त होती है।

द्रौपदी के जिन लंबे लंबे, काले बालों का कुछ ही दिन पहले राजसूय यज्ञ में अवभृथ-स्नान के समय मन्त्रीपूत जल से अभिषेक किया गया था, उन्हीं बालों का दुष्ट दु:शासन के द्वारा भरी सभा में खींचा जाना द्रौपदी को कभी नहीं भूला। उस अभूतपूर्व अपमान की आग उसके हृदय में सदा ही जला करती थी। इसीलिये जब जब उसके सामने कौरवों से सन्धि करने की बात आयी, तब तब उसने विरोध ही किया और बराबर अपने अपमान की याद दिलाकर अपने पतियों को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करती रही। अन्त में जब यही तय हुआ कि एक बार कौरवों को समझा बुझाकर देख लिया जाय, और जब भगवान श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे, उस समय भी उसे अपने अपमान की बात नहीं भूली और उसने अपने लंबे-लंबे काले बालों को उन्हें दिखाते हुए श्रीकृष्ण से कहा।

"श्रीकृष्ण तुम सन्धि करने जा रहे हो सो तो ठीक है, परंतु तुम मेरे इन खुले केशों को न भूल जाना"

जाहु भलें कुरुराज पै धारि दूत को वेस।।
भूलि न जैयो पै वहाँ केसौ कृष्णा-केस।।

'मधुसूदन! क्या मेरे ये केश आजीवन खुले ही रहेंगे? यदि पांडव युद्ध नहीं करना चाहते तो मैं अपने पांचों पुत्रों को आदेश दूँगी। पुत्र अभिमन्यु उनका नेतृत्व करेगा। मेरे वृद्ध पिता और भाई सहायता करेंगे। पर श्रीकृष्ण! तुम्हारा चक्र क्या शान्त ही रहेगा? इस पर श्रीकृष्ण ने गम्भीरता के साथ कहा:

"कृष्णे! आंसुओं को राको, मैंने प्रतिज्ञा की है। प्रकृति के सारे नियमों के पलट जाने पर भी वह मिथ्या नहीं होगी। तुम्हारा जिन पर कोप है, उनकी विधवा पत्नियों को तुम शीघ्र ही रोते देखोगी।"

काम्यकवन में जब दुष्ट जयद्रथ द्रौपदी को बलपूर्वक ले जाने की चेष्टा करने लगा, तब इस वीरांगना ने उसे इतने जोर से धक्का दिया कि वह कटे हुए पेड़ की तरह जमीन पर गिर पड़ा, किंतु फिर तुरंत ही उठ खड़ा हुआ और उसे बलपूर्वक रथ पर बैठाकर ले चला। जब भीम एवं अर्जुन उसे पकड़ लाये और उसको दुष्कर्म का पर्याप्त दण्ड मिल गया, तब द्रौपदी ने दया करके उसे छुड़वा दिया। द्रोपदी क्रोध के साथ साथ क्षमा का अपूर्व मेल है। उनका पतिव्रत-तेज तो अपूर्व था ही। जिस किसी ने भी उनके साथ छेड़ छाड़ की, उसी को प्राणों से हाथ धोने पड़े। दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक आदि सबकी यही दशा हुई। महाभारत के युद्ध में जो कौरवों का सर्वनाश हुआ, उसका मूल सती द्रौपदी का अपमान ही था।

महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। पांडव सेना शान्ति से शयन कर रही थी। श्रीकृष्ण पांचों पांडवों तथा द्रौपदी को लेकर उपप्लव्य नगर चले गये थे। प्रात: दूत ने समाचार दिया कि रात्रि में शिविर में अग्नि लगाकर अश्वत्थामा ने सबको निर्दयतापूर्वक मार डाला। यह सुनते ही सब रथ में बैठकर शिविर में पहुँचे। अपने मृत पुत्रों को देखकर द्रौपदी ने बड़े करुण स्वर में क्रन्दन करते हुए कहा। "मेरे पराक्रमी पुत्र यदि युद्ध में लड़ते हुए मारे गये होते तो मैं संतोष कर लेती। क्रूर ब्राह्मण ने निर्दयतापूर्वक उन्हें सोते समय मार डाला है।" द्रौपदी को धर्मराज ने समझाने का प्रयत्न किया। परंतु पुत्र के शवों के पास रोती माता को क्या समझायेगा कोई? भीम ने क्रोधित होकर अश्वत्थामा का पीछा किया। श्रीकृष्ण ने बताया कि नीच अश्वात्थामा भीम पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग कर सकता है। अर्जुन को लेकर वे भी पीछे रथ में बैठकर गये। अश्वात्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उसे शान्त करने को अर्जुन ने भी उसी अस्त्र से उसे शान्त करना चाहा। दोनों ब्रह्मास्त्र ने प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। भगवान वेदव्यास तथा देवर्षि नारद ने प्रकट

होकर ब्रह्मास्त्रों को लौटा लेने का आदेश दिया। अर्जुन ने तो ब्रह्मास्त्र लौटा लिया लेकिन अश्वथामा ने ऐसा नहीं किया। तब भीम और अर्जुन ने द्रोण-पुत्र को बॉंध लिया और अपने शिविर में ले आये। अश्वत्थामा पशु की भाँति बंधा हुआ था। निन्दित कर्म करने से उसकी श्री नष्ट हो गयी थी। उसने सिर झुका रखा था। अर्जुन ने उसे लाकर द्रौपदी के सम्मुख खड़ा कर दिया। गुरुपुत्र को इस दशा में देखकर द्रौपदी को दया आ गयी। उसने कहा- "इन्हें जल्दी छोड़ दो। जिनसे सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों की आप लोगों ने शिक्षा पायी है, वे भगवान द्रोणाचार्य ही पुत्ररूप में स्वयं उपस्थित हैं। जैसे पुत्रों के शोक में मुझे दु:ख हो रहा है, मैं रो रही हूँ, ऐसा ही प्रत्येक स्त्री को होता होगा। इनकी माता देवी कृपी को यह शोक न हो। वे पुत्र शोक में मेरी तरह न रोयें। ब्राह्मण का हमारे द्वारा अनादर नहीं होना चाहिए।" भीमसेन अश्वत्थामा के वध के पक्ष में थे। अन्त में श्रीकृष्ण की सम्मति से द्रोण पुत्र के मस्तिक पर रहने बाली मणि छीनकर अर्जुन ने उसे शिविर से बाहर निकाल दिया।

द्वारका से लौटकर अर्जुन ने जब यदुवंश के नाश का समाचार दिया, तब परीक्षित का राज्याभिषेक करके धर्मराज ने अपने राजोचित वस्त्रों का त्याग कर दिया। मौन-व्रत लेकर वे निकल पड़े। भाइयों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। द्रौपदी ने भी वल्कल पहना और पतियों के पीछे चल पड़ी। सबके पीछे चल रही थी। सब मौन थे। कोई किसी की ओर देखता नहीं था। द्रौपदी ने अपना चित्त सब ओर से एकाग्र करके परात्पर भगवान श्रीकृष्ण में लगा दिया था। उसे शरीर का पता नहीं था। हिम पर फिसल कर वह गिर पड़ी। शरीर उसी श्वेत हिमराशि में विलीन हो गया। महारानी द्रौपदी तो परम तत्त्व से एक हो चुकी थी। वह तो वस्तुत: भगवान की अभिन्न शक्ति ही थी।

ऐसी महान स्त्री थीं द्रोपदी। क्यों न वह प्रात: स्मरणीय और पूज्यनीय हों?